आसा की वार टीका

प्रो.फ़ैसर साहिब सिंघ

आसा की वार
टीका

१ओं सतिगुरप्रसादि ॥

आसा की वार

टीका

टीकाकार :

प्रो.फ़ैसर साहिब सिंघ
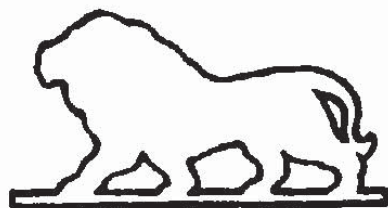
सिंघ ब्रदर्ज़

अमृतसर

आसा की वार टीका

टीकाकार :

प्रोफ़ैसर साहिब सिंघ डी.लिट.

अनुवादक :

डा. गुरशरनजीत सिंघ

ISBN 81-7205-197-2

प्रथम संस्करण : 1997
द्वितीय संस्करण : 2005

मूल्य : 35–00

प्रकाशक :

सिंघ ब्रदर्ज़

•
बाज़ार माई सेवां, अमृतसर – 143 006
•
S.C.O. 223–24, सिटी सैंटर, अमृतसर – 143 001
E-mail : singhbro@vsnl.com
Website : www.singhbrothers.com

प्रिंटर :

प्रिंटवैल्ल, 146, इंडस्ट्रीयल फ़ोकल पुआइंट, अमृतसर

अनुवादक की ओर से

पंदरवीं शताब्दी में गुरु नानक देव जी ने सिक्ख धर्म की स्थापना की। न केवल पंजाब प्रांत बल्कि सारे भारत में गुरु नानक देव जी का नाम बहुत आदर से लिया जाता है। महात्मा बुद्ध के बाद गुरु नानक जी पहले भारतीय चिन्तक और धार्मिक नेता थे, जिन्होंने जन-कल्याण हेतु अपने पूर्वजों की सभी विचारधाराओं का गहन अध्ययन कर के, मनुष्य की व्यवहारिक समस्याओं का हल ढूँढने के लिए, पुरातन रूढ़ियों व स्थापित कीमतों का वैज्ञानिक ढंग से खंडन करते हुए, एक मौलिक विचारधारा प्रस्तुत की। इसी विचारधारा का नाम सिक्ख धर्म है।

भारतीय धर्मों के विपरीत सिक्ख धर्म ने मनुष्य में सामाजिक व राजनैतिक चेतना को धार्मिक रंग में प्रस्तुत किया। सिक्ख धर्म अपने अनुयाइयों से शोषण रहत समाज, बराबरी, आज़ादी, और ख़ुशहाली के लिए संघर्ष की प्रेरणा देता है। सिक्ख धर्म अपने अनुयाइयों से फोकट कर्म-काण्ड, भेस, दिखावा और पाखंड की जगह सच्चे जीवन, उच्च नैतिक गुणों व ईमानदारी की बात पर बल देता है।

गुरु नानक देव जी ने अपनी शिक्षा के प्रचार हेतु बहुत वाणी लिखी, जो कि आज भी श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में मौजूद है। इस वाणी में एक विशेष रचना का नाम 'आसा की वार' है। 'आसा की वार' को एक प्रधानता हासिल है। इस वाणी का गायन सभी गुरुद्वारों में सुबह के समय करने की परम्परा शुरू से जारी है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस वाणी ने 'सिक्ख जीवन ढंग' को बहुत प्रभावित किया है।

'वार' क्या है ?

गुरु ग्रंथ साहिब में कुल २२ वारें हैं। इनमें से तीन गुरु नानक देव जी की रचनाएं हैं। 'वार' पंजाबी का प्राचीन काव्य रूप है। 'वार' वह गीत है जिसमें योद्धा का गुणगान होता है। इसमें एक नायक होता है दूसरा खलनायक। परन्तु गुरुवाणी की वारों में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक व्यवस्था की कटु आलोचना है और इस भ्रष्ट व्यवस्था के ख़िलाफ़ सच्चे धर्म पर आधारित व्यवस्था का वर्णन है।

'वार' परम्परागत रूप में पउड़ियों का समूह होती है। परन्तु गुरु ग्रंथ साहिब की एक वार को छोड़कर सभी वारों में पउड़ियों के साथ श्लोक भी जोड़े गए हैं। यह श्लोक गुरु अर्जुन देव जी ने बाद में जोड़े थे। मूल रूप में यह वारें भी पउड़ियों का समूह ही थीं।

पउड़ी और श्लोक

'सीढ़ी' को पंजाबी में 'पउड़ी' (पौड़ी) कहा जाता है। पंजाबी कावि-साहित्य में यह एक लोकप्रिय रूप है। 'पउड़ी' लघु आकार की रचना है, जो अपने आप में स्वतंत्र होती है। 'पउड़ी' में 5 से लेकर 8-10 पंक्तियाँ हो सकती हैं। 'श्लोक' एक और लघु आकार की कावि-रचना होती है, जिसमें एक ही विष्य पर विचार प्रस्तुत किया जाता है। ऐसा नहीं कि जिस गुरु व्यक्ति की 'पउड़ी' हो, उसी के श्लोक हों। प्रायः वारों में श्लोक किसी भी गुरु या कबीर जी के भी हैं। 'श्लोक' को 'दोहा' भी कहा जाता है।

इस वाणी को समझने या समझाने के लिए बहुत टीकाएं लिखी गई हैं। प्रस्तुत टीका प्रो. साहिब सिंघ जी डी.लिट्. द्वारा पंजाबी में लिखा गया

था। प्रो. साहिब सिंघ जी मूल रूप में हिन्दू परिवार में जन्में व पले थे, परन्तु वह सिक्ख धर्म की विचारधारा व सिक्ख जीवन-शैली से प्रभावित होकर सिख बन गए थे। वह सामान्य सिक्ख न होकर, बल्कि बीसवीं शताब्दी के सबसे महान विद्वानों में गिने जाते हैं। बेशक प्रो. साहिब सिंघ जी ने सिक्खों की राजनैतिक जमायत शिरोमणी अकाली दल के महा-सचिव का कार्य भी किया, परन्तु उन्होंने अपना जीवन गुरुवाणी टीकाकारी, सिक्ख इतिहास और सिद्धांत को वैज्ञानिक ढंग से समझने की एक नई परम्परा कायम की।

प्रो. साहिब सिंघ जी गुरमुखी के इलावा संस्कृत, हिन्दी, फ़ारसी व अंग्रेज़ी के भी विद्वान थे। उनका ज्ञान होम्योपैथी आदि कई विष्यों में था। इसलिए गुरुवाणी टीकाएं जो आप ने की हैं, उनका मुल्य बहुत अधिक है। प्रो. साहिब सिंघ जी द्वारा गुरुवाणी का संपूर्ण टीका, *आदि बीड़ बारे* और *गुरबाणी व्याकरण* उनकी अमर रचनाएं मानी जाती हैं। इनके अतिरिक्त उनकी कई पुस्तकें प्राप्त हैं, जिन्हें गुरुवाणी प्रेमी बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। परन्तु यह सभी रचनाएं गुरमुखी में होने के कारण हिन्दी जानने वाले पाठक, इन से लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं। पंजाब से बाहर रह रहे सिक्ख भाइयों तथा गुरुवाणी प्रेमी सहजधारी भाइयों की यह इच्छा थी कि प्रो. साहिब सिंघ जी की कुछ ज़रूरी रचनाओं का हिन्दी अनुवाद ज़रूर होना चाहिए। यह ख़ुशी की बात है कि इन पुस्तकों के प्रकाशक सिंघ ब्रदर्ज़, अमृतसर ने इस दिशा में कुछ प्रयत्न किया है। पहले प्रो. साहिब सिंघ जी द्वारा *जपुजी साहिब टीका* का और अब *आसा की वार* का हिन्दी अनुवाद त्यार करवा कर, प्रकाशित किया है। वाहिगुरु का धन्यवाद है और विनती है कि इस टीके को पढ़ने वाले सभी धार्मिक लोगों तथा पाठकों को अध्यात्मिक लाभ हो। मैं आशा करता हूँ कि इस टीके को पढ़ने से

गुरुवाणी समझने की चेष्टा बढ़ेगी। यही प्रो. साहिब सिंघ जी का उद्देश्य रहा और यही मेरा भी।

मैं एक बार फिर प्रो. साहिब सिंघ जी को इस अनुपम रचना के लिए श्रद्धांजली देता हुआ, गुरु नानक देव जी के आगे शीश झुकाकर उन्हें धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मुझ से अनुवाद की सेवा ली है।

गुरशरनजीत सिंघ (डा.)

दो बातें

इस टीके का मुख्य लक्ष्य यह है कि पाठकों को गुरुवाणी के अर्थ व्याकर्णानुसार करने आ जाएं। अब तक एक पंक्ति के कई अर्थ करने की आदत सी है, वह न रहे। प्रत्येक शब्द की रचना पहले समझ में आए, फिर उस रचना के मुताबिक अर्थ करने का प्रयत्न किया जाए। उदाहरण के तौरपर पहली पउड़ी के श्लोकों मे शब्द 'सउ' दो बार आया है, कोई कारण नहीं दिखता कि पहला अर्थ गिनती-वाचक (सौ) लिया जाए और दूसरी बार उसके उच्चारण में 'ह' लगाकर उसका अर्थ 'शहु' (पति) किया जाए।

इसी प्रकार अगर शब्द 'अकल' के साथ कहीं 'अकलि' आ गया है, तो समझ होनी चाहिए कि यह दोनों शब्द किस भाषा में से आए हैं, और इनके अर्थ में क्या अंतर है। अगर कहीं 'खैरि' के साथ शब्द 'खैरु' मिलता है, तो पाठक को समझ होनी चाहिए कि इनमें क्या भेद हैं, इत्यादि।

इस स्वभाव का रिवाज डालने के लिए शब्दार्थ बहुत विस्तार से दिए हैं। *जपुजी सटीक* प्रकाशित करते समय ध्यान था कि कुछ व्याकरण भी दिया जाए, परन्तु अब सारा व्याकरण त्यार हो जाने के कारण टीके के साथ कुछ व्याकरण देना ज़रूरी नहीं समझा गया। हां, कई जगह कई शब्दों के अर्थों संबंधी वीचार करके खोजी सज्जनों की रुची इस दिशा में लगाने का प्रयत्न किया है कि वह किसी पंक्ति के अर्थ करते समय, पहले प्रत्येक शब्द की रचना को समझा करें।

आसा की वार का यह टीका अपनी सुपत्नी आज्ञा कौर की याद में लिखा था, जो २८ दिसम्बर, १९३२ को प्रलोक सिधारीं।

57, जोशी कालोनी
माल रोड, अमृतसर
8 दिसम्बर, 1973

साहिब सिंघ
रीटायर्ड प्रो.फ़ैसर

'आसा की वार' का भावार्थ

गुरु अर्जुन साहिब जी से पूर्व 'आसा की वार' का क्या रूप था इस बात का निर्णय 'सलोक भी महले पहिले के लिखे' शीर्षक की व्याख्या में किया है। 'वार' पहले केवल पउड़ियाँ ही थीं। इसलिए 'आसा की वार' का भावार्थ लिखते या समझते समय प्रत्येक पउड़ी के श्लोकों का ध्यान रखने की ज़रूरत नहीं है।

गुरु ग्रंथ साहिब जी की वाणी के शब्द या श्लोक आदि आमतौर पर किसी विशेष ऐतिहासिक घटना संबंधी हैं, परन्तु उनका मुख्य भाव हमेशा प्रत्येक मनुष्य के जीवन पर घट सकता है। इस बात की ज़रूरत नहीं है कि अगर वैसी ही ऐतिहासिक घटना हो, तभी कोई शब्द या श्लोक जँचेगा। इसी प्रकार 'आसा की वार' के श्लोकों का संबंध पउड़ियों से नहीं है, केवल मुख्य भावार्थ का संबंध पउड़ियों के भावार्थ के साथ है।

इसे अच्छी तरह समझने के लिए गुरु नानक सहिब के जीवन में से एक घटना लें। मंगलाद्वीप से आते हुए, रास्ते में जैनियों के एक मठ्ठ पर गुरु जी एक सरेवड़े से मिले, जिसका नाम 'अनभी' था। उसके साथ धर्म-चर्चा में गुरु जी ने यह श्लोक उच्चारण किया :

सिरु खोहाइ पीअहि मलवाणी जूठा मँगि मँगि खाही ॥
फोलि फदीहति मुहि लैनि भड़ासा पाणी देखि सगाही ॥
भेडा वागी सिरु खोहाइनि भरीअनि हथ सुआही ॥

अब यह श्लोक 'माझ की वार' की २६वीं पउड़ी के साथ दर्ज है। उपरोक्त लिखित में कहीं लिखा नहीं कि उस सरेवड़े को उपदेश देते समय गुरु नानक साहिब ने यह 'माझ की वार' भी उच्चारण की थी, जिसमें

अब यह श्लोक दर्ज हैं। श्लोकों के साथ यह वार उस सरेवड़े के संबंध में हो भी नहीं सकती, क्योंकि इसमें मुसलमानों के बारे में श्लोक भी हैं।

इसलिए 'माझ की वार' के मुख्य उपदेश का वर्णन करते समय इन श्लोकों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमी का वर्णन करना ग़लत है। 'माझ की वार' केवल पउड़ियाँ ही हैं, इसलिए 'वार' का मुख्य भावार्थ केवल पउड़ियों का ही मुख्य भावार्थ हो सकता है।

इसी प्रकार 'आसा की वार' के मुख्य उपदेश का वर्णन करते समय यह कहना ग़लत है कि गुरु नानक साहिब ने 'आसा की वार' के द्वारा रासों संबंधी, मुस्लमानों द्वारा मुर्दे दफन करने संबंधी, जनेऊ संबंधी, गऊ के गोबर संबंधी, अहँकार संबंधी, स्त्री जाति संबंधी उपदेश दिया है। श्लोकों के भिन्न भिन्न विषय ही बता रहे हैं कि यह सभी समयानुसार उच्चारण किए गए हैं। जनेऊ की घटना प्रसिद्ध है। इतिहास में वह विशेष श्लोक भी दिए गए हैं, जो जनेऊ समय गुरु जी ने पंडित को सुनाए थे, परन्तु कोई समझदार व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि यह सारी 'वार' सभी श्लोकों के साथ गुरु नानक देव जी ने उस जनेऊ की रस्म के समय पंडित को उपदेश देने के लिए उच्चारण की थी। जनेऊ के श्लोकों की घटना का 'आसा की वार' की १५वीं पउड़ी के विषय के साथ कोई संबंध नहीं है। यही स्थिति सभी श्लोकों में है। इन श्लोकों की केवल वही शिक्षा जो सारी मनुष्य जाति के लिए है और पउड़ियों के साथ समानता रखती है, 'आसा की वार' के मुख्य उपदेश में ली जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में यूँ कहें कि 'आसा की वार' का मुख्य भावार्थ केवल पउड़ियों का ही मुख्य भावार्थ है।

इसलिए जो श्रीमान यह शिकायत किया करते थे कि 'आसा की वार' के सारे विष्य की एक लड़ी नहीं बनती, उनकी सेवा में प्रार्थना है कि श्लोकों के बिना थोड़े ध्यानपूर्वक मूल 'आसा की वार', अर्थात, केवल पउड़ियों का पाठ करें और देखें कि सभी पउड़ियाँ कैसे एक ही विष्य में बंधी हुई हैं। बाकी रही बात श्लोकों की, उनसे जोड़े जाने वाली घटनाएँ

छोड़कर, उनके 'मुख्य भावार्थ' को देखा जाए, तो स्पष्ट हो जाएगा कि प्रत्येक श्लोक जिस पउड़ी के साथ दर्ज है वहाँ उसका मुख्य भावार्थ पउड़ी से समानता रखता है।

कई इतिहासकार लिख गए हैं कि 'आसा की वार' की पहली नौ पउड़ियाँ (श्लोकों के साथ) पाक-पटन में शेख़ ब्रह्म के पास उच्चारण की गई थीं और बाकी १५ किसी और जगह। यह धारणा पूरी तरह ग़लत है। सारी 'वार' का एक ही विषय है, जहाँ भी उच्चारण की, सारी एक ही समय उच्चारण की गई है।

पउड़ी-वार भाव

१. कुदरत बनाकर इसमें स्वयं बैठा प्रभु जगत-तमाशा देख रहा है।
२. जगत में प्रभु ने जीव को भेजा है कि यह 'सत्य' को ग्रहण करे; 'नाम सुमिरन' मनुष्य का जीवन-लक्ष्य है। प्रत्येक प्राणी को अपने किए कर्मों का हिसाब देना होता है।
३. जो जीव केवल भोग करने में ही जीवन व्यतीत करते हैं, उनका जीवन व्यर्थ जाता है।
४. जिस मनुष्य पर प्रभु कृपा करें, उसे 'गुरु' मिलवा देता है, उसे जन्म-मरन के चक्कर में से निकाल लेता है, क्योंकि वह जीव अहँकार त्याग कर 'नाम' जपता है।
५. प्रभु का 'नाम' ही दुखों व नरक से रक्षा करता है। अगर जीव अपना भला चाहता है तो इसे यही कमाई करनी चाहिए। जगत में हमेशा नहीं बैठे रहना।
६. पर यह निश्चय जानो कि 'नाम' की दात 'गुरु' के बिना किसी और जगह से नहीं मिलती। गुरु में ही प्रभु ने स्वयं को प्रक्ट किया है।
७. 'नाम' वही मनुष्य जप सकता है जो संतोषी है और बुरी दिशा में पाँव नहीं रखता, जो दुनियावी बंधनों में नहीं फँसता और स्वादों से बचा रहता है।

८. जिस मनुष्य पर प्रभु की कृपा हो, उसके हृदय में 'नाम' आ जाता है। परन्तु अपने ही मन के पीछे चलने वाले मूर्ख व्यक्ति अपना जीवन व्यर्थ गँवा देते हैं।

९. जो मनुष्य नम्रता में रहकर, प्रभु के द्वार पर गुण-गान करते हैं, वह हैं प्रभु के भक्त और वह भक्त उसे प्यारे लगते हैं।

१०. इसलिए अगर गुरमुखों की चरन-धूल मिले तो वह अपने माथे पर लगाएँ, भावार्थ यह कि गुरमुखों के पास नम्रता-पूर्वक जाएँ। इस तरह माया के मोह को त्यागा जा सकता है।

११. फिर भी, केवल अपने यत्न पर विश्वास करना भूल है। प्रभु की ओर से जिन पर कृपा होती है, वही 'नाम' जपते हैं। हमेशा प्रभु की कृपा की इच्छा रखें।

१२. प्रभु के घर में पढ़े-अनपढ़े का अंतर नहीं, हरेक की अपनी अपनी कमाई अनुसार हिसाब होता है। जो मनुष्य मुँह-ज़ोर है, वह अंत में दुखी होता है।

१३. इस जगत को एक सागर जानो जिसमें विकारों की लहरें उठ रही हैं, इसमें से पार जाने के लिए गुरु, मानो, जहाज़ है। परन्तु, यह समझ किसी किस्मत वाले को ही आती है जिस पर मालक की कृपा हो।

१४. रूप (भावार्थ दिखावा) साथ नहीं जाता, अच्छी-बुरी कमाई ही साथ जाती है। जिन्हों की आज्ञानुसार लोगों पर ज़ुल्म होते हैं, उनके काम यमराज जैसे हैं।

१५. जिस जीव पर प्रभु कृपा करता है उसे अपनी 'आज्ञा' में चलाता है, जिस कारण वह जीव प्रभु के द्वार पर कबूल होता है।

१६. हरेक की प्रतिपालना स्वयं ही करता है, इज़्ज़त देने वाला स्वयं ही है। परन्तु इस इज़्ज़त का अभिमान नहीं करना चाहिए, वह कभी कभी राजा को भी भिखारी बनाकर द्वार द्वार पर भटकने पर मजबूर कर देता है।

१७. सुन्दर घोड़े, महल, राज्य—इनमें मस्त होकर मौत को भुला देना भूल है, आयु व्यर्थ जाती है।
१८. असली शोभा, ऊँचे अध्यात्मिक गुण जो सतगुरु से प्राप्त होते हैं, धारण करने से होती है। जिस पर प्रभु कृपा करता है उसे गुरु मिलवाता है; गुरु मिलने से अवगुण दूर होते हैं और गुण प्रकट होते हैं।
१९. प्रत्येक जीव अपने आप में फँसा है; पर इस जगत की ख़ातिर अभिमान करना भूल है, क्योंकि यह साथ नही जाना।
२०. इस जीव की आयु निर्धारत है, उसे चाहिए कि प्रभु का सुमिरन करके अपना जीवन संवारे, वह प्रभु प्रत्येक को जीवन-सत्ता दे रहा है।
२१. अपना बोया काटना पड़ता है। बुराई से बचें, वह खेल खेलें जिससे मालक से दोस्ती बन जाए।
२२. जो मनुष्य 'चाकर' बनता है और प्रभु की मर्ज़ी में चलता है, वह शोभा प्राप्त करता है, मालक से बराबरी करने पर शर्मिंदा होना पड़ता है।
२३. पैदा करने वाला तथा मारने वाला प्रभु स्वयं है, किसी को सुख व किसी को दुख स्वयं देता है, वही प्रत्येक की पालना करने वाला है।
२४. संसार को बनाने वाला प्रभु ही रोज़ी-रोटी देने वाला है। उसके बिना जीव का कोई आधार नहीं।

समूचा भाव

१. (पउड़ी १, २, ३) प्रभु ने स्वयं से जगत बनाया, इसमें प्रत्येक जगह बैठकर जगत का खेल देख रहा है। जगत में मनुष्य पैदा किया है कि 'सत्य' को ग्रहण करे, 'सच्चे' प्रभु की बंदगी करे, परन्तु दुनिया में लग कर आदमी जीवन की बाज़ी हार रहा है।
२. (न: ४, ५ ,६) प्रभु की कृपा द्वारा जिसे गुरु प्राप्त हो जाता है, वह 'अपना आपा' मिटाकर गुरु-उपदेश सुनता है और 'नाम' जपता है,

जिस द्वारा उसके दुख दूर होते हैं। गुरु के बिना यह दात नहीं मिलती, गुरु की आँख ही प्रभु का दर्शन हर जगह करने योग्य है।

३. 'नाम' का क्या अर्थ है ? (७ से १०) संतोष का जीवन, अपने भीतर हर समय प्रभु को दृढ़ करना, गुरसिखों की संगत, केवल अपनी बुद्धी पर यकीन न करना, बल्कि (११ ये १५) प्रमात्मा की कृपा पर आश्रित होकर प्रयत्न करना, किसी विद्या के अभिमान से न झगड़ना, बल्कि 'अपना आपा' गुरु से न्योशावर कर देना, नेक कमाई, नेक कर्म तथा प्रभु की आज्ञा में रहना।

४. दुनियावी यश का अभिमान झूठा है—(१६) प्रभु स्वयं यश देता है। परन्तु अगर वह चाहे तो राजे को कंगाल बना देता है और (१७) राज्य, सिंघासन तथा महल देखकर जीवन गँवा लेना भूल है—(१८) अध्यात्मिक गुण सब से ऊँचा धन है। यह गुण गुरु द्वारा मिलता है—(१९) ममता में फँसकर किसी अहँकार-वश बुराई की ओर न चलें, किसी का दिल न दुखाएँ—(२०) जीवन सँवारें और प्रभु को याद करें, यहाँ हमेशा बैठे नहीं रहना। (२१) अपने किए अनुसार सुख दुख मिलता है, तो फिर बुरे मार्ग पर क्यों चलें ? (२२) दुनिया के झूठे अभिमान और प्रभु से बराबरी करके शर्मिंदगी उठानी पड़ती है। (२३) किसी को सुख व किसी को दुख प्रभु स्वयं ही दे रहा है। (२४) प्रभु स्वयं ही रोज़ी देने वाला है, सिवाय उसके जीव का कोई आधार नहीं।

गुरु नानक देव जी का संक्षिप्त जीवन

यह वाणी गुरु नानक देव जी की उच्चारण की हुई है। पाठकों की जानकारी के लिए उनका जीवन बहुत थोड़े शब्दों में दिया जाता है :

१. जन्म—तलवंडी राय भोए की, वैशाख सुदी ३, संमत १५२६ (१५ अप्रैल १४६९)। ७ वर्ष की आयु, पंडित के पास पढ़ने गए (१४७६ ई.)। बीबी नानकी (गुरु जी की बहन) की शादी १४७७ ई. को। आयु ९ वर्ष, जनेऊ, पंडित हरदयाल 'दइआ कपाह संतोखु सूतु।'

२. आयु ११ वर्ष, (१४८० ई.) भैंसें चराईं। किसी के खेत को भैंसों ने ऊजाड़ा।

   आयु १३-१४ वर्ष, वृक्ष की कथा, राय बुलार ने गुज़रते देखा। आप अपने पिता की आज्ञानुसार खेत देखने गए, खेत देखकर एक वृक्ष के नीचे सो गए।

३. आयु १६ वर्ष, शादी वटाला के रहने वाले बाबा मूला जी की बेटी से (वैशाख वदी १, संमत १५४२) इसी वर्ष शादी। आयु २० वर्ष, वैद्य की घटना। आयु २८ वर्ष, जन्म बाबा श्री चन्द जी (१४९७ ई.)। जन्म बाबा लखमी चंद जी (१५०० ई.)। आयु ३४ वर्ष, सच्चा सौदा की घटना।

४. आयु ३५ वर्ष ६ मास (१५०४ ई.), सुल्तानपुर भाई जयराम जी के पास गए।

नवंबर १५०४ से अक्तूबर १५०७ तक सुल्तानपुर रहे

१. नवाब दौलत ख़ां के मोदी, परिवार को यहीं बुलवा लिया। पिता कालू जी को भी मिलने गए। भाई मरदाना भी यहाँ आ गया।

२. मैलसी का रहने वाला भाई भगीरथ सिख बना, जिस द्वारा लाहौर

का भाई मनसुख सिख बना, गुरु जी के पास ही रहा। सुल्तानपुर छोड़ने से पहले इसे भी व्यापार करने भेज दिया।

३. आयु ३८ वर्ष ६ मास (सितंबर १५०७ ई.), वेईं प्रवेश की घटना, काज़ी और नवाब के साथ नमाज़।
४. परिवार को बाबा मूला जी को सौंपा। भाई मरदाने को साथ लिया।

पहली प्रचार-यात्रा, अक्तूबर १५०७ से १५१५ तक
हिन्दु तीर्थ देखे

१. माता पिता को मिलने तलवंडी। ऐमनाबाद, मलिक भागो के श्राद्ध की घटना।
२. हरिद्वार, पश्चिम की ओर पानी देना, वैशनव साधू का चौका, नानक मता, कनफटे योगी, यहाँ से ३० कोस पर रीठों का जंगल, मीठा रीठा। अयोध्या, पराग, बनारस, पंडित चतुरदास 'सालगराम बिप........' गायन 'दीवा मेरा एकु नामु.......'।
३. पटना, सालस़ राय जौहरी और अधरका। यहाँ चार महीने रहे।
४. आसाम (धनपुर) नूरशाह की घटना, जादू-टोने, कलकत्ते से जगन्नाथपुरी 'गगन मै थाल......'।
५. सागर किनारे रामेश्वर तीर्थ। राजा शिव नाभ। पश्चिम किनारा, सोमनाथ—द्वारका।
६. नर्बदा नदी के किनारे 'मंदिर ओंकार' शिव का मंदिर, यहाँ वाणी 'ओंकार'। ठग्गों और मानवखोरों से भेंट, कौडा।
७. बीकानेर, अनभी सरेवड़ा 'सिरु खोहाइ......', पुष्कर तीर्थ। मथुरा, 'किते देसि न आइआ।' वृंदावन, 'वाइनि चेले।'
८. दिल्ली, पानीपत। कुरुक्षेत्र, पंडित नानू, 'माँस' पर चर्चा।
९. सुल्तानपुर बेबे नानकी जी को मिले, तलवंडी माता-पिता को।
१०. पख्खो के रंधावे (रावी के किनारे) परिवार को मिलने गए, करोड़ी मल्ल, करतारपुर बसाया (१३ माघ संमत १५७२, १५१६ ई. का आरम्भ) माता पिता भी यहाँ। दो वर्ष यहाँ ठहरे।

दूसरी यात्रा, १ वर्ष, उत्तराखंड, करतारपुर

(सन् १५१७ से १५१८)

१. पसरूर, ऐमनाबाद, स्यालकोट, हमज़ा ग़ौस की घटना।
२. पंडित ब्रह्मदास और कमाल, सुमेर पर्वत, योगियों व सिद्धों से मिले।
३. स्यालकोट, मूला क्षत्री। सन् १५१८ में करतारपुर वापसी।

तीसरी यात्रा, लगभग तीन वर्ष, पश्चिम देश

(१५१८ से १५२१, करतारपुर से)

१. पाकपटन, शेख़ ब्रह्म। तुलम्बा, सज्जन ठग 'उजल कैहा.....', रियास्त बहावलपुर, रोहड़ी सख्खर।
२. मक्का, जीवन ने पैर पकड़ कर घसीटा, रुकनदीन की चर्चा, खड़ाव निशानी, मदीना, बग़दाद, काबुल।
३. हसन अब्दाल, वली कँधारी की घटना। भेरा, शहु सोहागन की घटना। डिण्गा, एक योगी का चालीसा।
४. ऐमनाबाद, (सन् १५२१) बाबर का हमला, करतारपुर वापसी (यात्राएँ समाप्त)।

करतारपुर, १५२१ से सितंबर १५३१ तक

१. रमदास का रहने वाला बालक बूड़ा, बाबा बुढा जी।
२. बाबा लहणा जी अक्तूबर सन् १५३२ में।
३. अचल वटाले, योगियों से चर्चा, 'सिद्ध गोसटि' (मार्च १५३९ ई.)। मुल्तान १५३९ ई.।
४. गुरगद्दी बाबा लहणा जी को अस्सू सुदी ५, १५९६ (सितंबर १५३९), जोती-जोति अस्सू सुदी १०, १५९६ (सितंबर १५३९) कुल आयु ७० वर्ष, ५ मास, ७ दिन।

१ओं सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ।।

शब्दार्थ : **१ओं**—(इक ओंकार), 'ओंकार' संस्कृत के 'ओं' शब्द से लिया गया है। यह शब्द 'ओं' सब से पहले उपनिषदों में प्रयोग हुआ है। 'मांडूक्य' उपनिषद में लिखा है कि जो कुछ हो चुका है, जो कुछ अब मौजूद है और जो होगा, यह 'ओं' ही है।

उपनिषदों से पीछे के समय 'ओं' विष्णु, शिव और ब्रह्मा के समुदाय के लिए प्रयोग हुआ।

'ओंकार' शब्द 'प्रमात्मा' के अर्थ में श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी में कई बार आता है, जैसे :

ओंकारि ब्रह्मा उतपति ।। ओंकारु कीआ जिनि चिति ।।
ओंकारि सैल जुग भए ।। ओंकारि बेद निरमए ।।

(रामकली महला १ दखणी ओंकारु)

शब्द 'एकंकार' भी (जो १ओं का उच्चारण है) श्री गुरु ग्रंथ साहिब में प्रयोग किया गया है, यथा :

एकम 'एकंकारु' निराला ।। अमरु अजोनी जाति न जाला ।।

(बिलावलु महला १ थिती घरु १० जति)

सतिनामु—जिस का नाम 'सति' है। शब्द 'सति' संस्कृत के धातु 'अस' से है, जिसका अर्थ है 'होना'। 'सति' का संस्कृत रूप 'सत्य' है। इस का अर्थ है 'अस्तित्व वाला'। 'सतिनामु' का अर्थ है 'वह ओंकार जिसका

नाम है अस्तित्व वाला।'

पुरखु—संस्कृत भाषा में इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है, "पुरि शेते इति पुरुषह"। अर्थात, जो शरीर में शयन कर रहा है। इसका संस्कृत में सामान्य अर्थ 'मनुष्य' है। श्रीमद भगवत गीता में यह 'आत्मा' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। महाकवि कालीदास ने रघुवंश में 'पुरुष' शब्द का 'ब्रह्माण्ड की आत्मा' अर्थ में प्रयोग किया है। इसी प्रकार संस्कृत साहित्य के विख्यात् ग्रन्थ 'शिशुपाल वध' में भी इन अर्थों में ही प्रयोग हुआ है।

किन्तु श्री गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी में 'पुरखु' का अर्थ है—'वह ओंकार, जो सारे जगत में व्यापक है, वह आत्मा जो सब सृष्टि में समा रही है। 'मनुष्य' और 'आत्मा' के अर्थों में भी इस का प्रयोग हुआ है।

अकाल मूरति—'मूरति' (मूर्ति) शब्द स्त्री-लिंग है, 'अकाल' इस का विशेषण है, इसलिए यह शब्द स्त्री-लिंग रूप में ही लिखा गया है। यदि 'अकाल' शब्द अकेला ही 'पुरखु', 'निरभउ', 'निरवैर' की भान्ति १ओं का गुणवाचक रहा होता, तो यहाँ इस का पुल्लिग रूप होता और उस रूप में इसके अन्त में (ु) की मात्रा प्रयुक्त होती।

अजूनी—योनियों से रहत, जो जन्म में नहीं आता।

सैभं—स्वयंभू (स्व-स्वयं। भं-भू), अपने आप से होने वाला, जिसका प्रकाश अपने आप से हुआ है; स्वयं-प्रकाश।

गुर प्रसादि—गुरु के प्रसाद से, गुरु के अनुग्रह से। भाव यह है कि उपरोक्त '१ओं' गुरु की कृपा से (प्राप्त होता है)।

अर्थ : अकाल पुरख एक है, जिस का नाम 'अस्तित्व वाला' है, जो सृष्टि का कर्ता है, जो सब में व्यापक है, भय से रहत है, वैर से रहत है, जिस का स्वरूप काल के बिना है (भाव, जिस का शरीर नाश-रहत है), जो योनियों में नहीं आता, जिस का प्रकाश अपने-आप से हुआ है और जो सतिगुरु की कृपा से प्राप्त होता है।

आसा महला १ ॥

वार सलोका नालि
सलोक भी महले पहिले के लिखे ॥

शब्द 'महला' का उच्चारण क्या है ?

गुरु ग्रन्थ साहिब में शब्द 'महल', 'महलु', 'महला' कई बार आते हैं। एक दो जगह को छोड़कर कहीं भी इनका उच्चारण 'महल्ल' और 'महल्ला' नहीं है। इसलिए जब यही 'महला' शब्द 'गुर-व्यक्ति' के लिए प्रयोग हो (जैसे यहाँ आया है—आसा महला १), तब इस का उच्चारण विशेष रूप से 'महल्ला' करना अशुद्ध है। यह बात और भी अधिक स्पष्ट् हो जाती है, जब हम इस शब्द के अर्थ को ध्यान से देखते हैं।

शब्द 'महला' संस्कृत 'महिला' का रूप बताकर इस का अर्थ 'स्त्री' करना ठीक नहीं है, क्योंकि कई स्थानों पर स्पष्ट् तौर से इस के साथ 'पहिला', 'तीजा' आदि शब्द प्रयोग हुए हैं, जो पुल्लिंग हैं। नमूने के लिए देखें, श्री गुरु ग्रंन्थ साहिब का पृष्ठ ५८२, बीड़ १४३० पृष्ठ वालीः 'वडहंस महला ३ महला तीजा'। अगर 'महला', स्त्री-वाचक होता, तो पहला, तीजा की जगह 'पहली', 'तीजी' होती।

'सीता' स्त्री-वाचक शब्द है और 'गण्डा' पुल्लिंग। 'सीता का पुत्र' कहना शुद्ध है, पर 'गण्डा का पुत्र' कहना अशुद्ध है। 'गण्डे का पुत्र' कहना चाहिए। इसी तरह 'कमला की पुस्तक', 'विमला का पिता' कहना चाहिए आदि; पर 'झण्डे की दुकान', 'मेले का घर', इन उदाहरणों से नियम निकलता है कि जब आकारांत पुल्लिंग शब्द के साथ 'का, के, की' आदि सम्बन्ध बोधक शब्द प्रयोग किए जाएँ तो आखरी 'आ की मात्रा' (ा) ए (े) में बदल जाती है। 'सलोक भी महले पहिले के लिखे' में 'महला' की आखिरी 'आ की मात्रा' 'ए' बन गई है। इस से स्पष्ट् है कि शब्द 'महला' पुल्लिंग है।

शब्द 'महल' और 'महला' के अर्थों के आधार पर प्रमाणों को चार भागों में बाँट सकते हैं :

(१) महल—स्त्री

महल कुचजी मड़वड़ी काली मनहु कसुध ॥
जे गुण होवनि ता पिर रवै नानक अवगुण मुंध ॥१॥५॥

(सलोक म: १, मारू की वार म: ३)

(२) महलु—घर, रहने की जगह, वह अवस्था जहाँ प्रमात्मा के दर्शन हो जाते हैं।

खोजत खोजत दुआरे आइआ ॥
ता नानक जोगी महलु घरु पाइआ ॥४॥१॥१२॥ *(रामकली म: ५ घरु २)*

डिगि न डोलै कतहू न धावै ॥
गुर प्रसादि को इहु महलु पावै ॥३॥९॥२०॥ *(रामकली म: ५ घरु २)*

(३) महल, महला—बड़ी इमारतें, पक्के घर।

कितै देसि न आइआ सुणिऐ तीरथ पासि न बैठा ॥
दाता दानु करै तह नाही महल उसारि न बैठा ॥२॥१॥

(रामकली म: १, असटपदीआं)

गढ़ मंदर महला कहा जिउ बाजी दीबाणु ॥
नानक सचे नाम विणु झूठा आवणु जाणु ॥
आपे चतुरु सरूपु है आपे जाणु सुजाणु ॥४२॥

(रामकली म: १, द्खणी ओंकारु)

(४) महला—काया, शरीर।

गुर महली घरि आपणे सो भरपुरि लीणा ॥
सेवक सेवा ता करे सच सबदि पतीणा ॥
सबदे पतीजै अंकु भीजै सु महलु महला अंतरे ॥
आपि करता करे सोई प्रभु आपि अंति निरंतरे ॥८॥२॥५॥

(सूही छंत म: १ घरु ४)

कंचन देही सबदु भतारो ॥
अनदिनु भोग भोगे हरि सिउ पिआरो ॥
महला अंदरि गैर महलु पाए भाणा बुझि समाहा हे ॥१४॥५॥१४॥

(मारू म: ३ सोलहे)

उच्चारण के सम्बन्ध में पहले भी लिखा गया है कि उच्चारण 'महल्ला' नहीं है। जैसे आम तौर पर शब्द 'रहत', 'बहरे', 'बहले', 'सहज' आदि का उच्चारण करते हैं, वैसे ही शब्द 'महला' का भी करना चाहिए।

उपरोक्त दर्शाये सभी प्रमाणों को ध्यान से देखें तो शब्द 'महला' का अर्थ भी पता लग जाता है। सतिगुरु जी द्वारा कथित वाणी में नाम केवल 'नानक' आता है। यह निर्णय करने के लिए कि कौन सी वाणी किस गुरु व्यक्ति की है, शब्द 'महला' प्रयोग किया गया है, जिस का अर्थ है 'व्यक्ति', 'देह', 'शरीर', जैसे उपरोक्त दिए गए प्रमाणों के अंक न: ४ में शब्द 'महला' का अर्थ 'काया' 'शरीर' है।

इसलिए 'महला पहिला' का अर्थ है 'गुरु नानक पहली व्यक्ति'। 'महला दूजा' का अर्थ है 'गुरु नानक दूसरी व्यक्ति'। 'महला तीजा' का अर्थ है 'गुरु नानक तीसरी व्यक्ति', इत्यादि।

सत्ते बलवंड की वार में यह बात और भी स्पष्ट् हो जाती है, जब वह लिखते हैं कि 'जोति' तो सभी गुर-महलों में गुरु नानक वाली है, केवल काया ही बदली है :

लहणे दी फेराईऐ नानका दोही खटीऐ ॥
जोति ओहा जुगति साइ सहि काइआ फेरि पलटीऐ ॥२॥

(रामकली की वार सतै बलवंडि आखी)

भाई गुरदास जी भी अपनी वारों में यही ख़्याल प्रक्ट करते हैं :

अरजनु काइआ पलटि कै मूरति हरिगोबिंद सवारी ॥

सलोक भी महले पहिले के लिखे

सारी गुरवाणी को क्रमबद्ध कर श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी के रूप में इकट्ठा करवाने वाले श्री गुरु अर्जुन देव जी थे। भिन्न-भिन्न शब्दों और वाणियों के आरम्भ में शीर्षक भी गुरु अर्जुन साहिब जी ने ही भाई गुरदास जी से लिखवाए। 'आसा की वार' के आरम्भ में भी यह पंक्ति 'सलोक भी महले पहिले के लिखे' उनकी ही लिखवाई हुई है। वह स्वयं लिख रहे हैं कि इस वार के 'साथ' श्लोक भी हमने महले पहले के लिख दिए हैं। इस से यह बात स्पष्ट् है कि श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की बीड़ तैयार होने से पहले 'आसा की वार' केवल २४ पउड़ियां ही थी। सभी गुर-महलों की और भक्तों आदि की वाणी को संग्रहित करते समय गुरु अर्जुन साहिब जी ने सब से पहले हर राग के 'शब्द', फिर 'अष्टपदियां', 'छंत' तथा 'वार' आदि लिखवाए और राग के अंत में भक्तों के शब्द लिखवाए। इसी तरह सारे गुर-महलों के श्लोकों को आप ने वारों की पउड़ियों के साथ दो-दो तीन-तीन कर के जोड़ दिया। फिर भी जो श्लोक बच गए, उन्हें बीड़ के अन्त में दर्ज किया और शीर्षक दिया 'श्लोक वारां ते वधीक'।

टुँडे असराजै की धुनी ॥

अर्थ : धुनी—स्वर। (यह वार) टुँडे (राजा) असराज की वार के स्वर पर (गानी है)।

साखी

असराज एक राजा का पुत्र था, जिस का नाम सारंग था। अपनी पहली पत्नी के मर जाने के कारण राजा सारंग ने बुढ़ापे में दूसरी शादी कर ली। नई रानी का दिल अपने सौतेले बेटे असराज पर मोहित हो गया, परन्तु असराज अपने धर्म पर अडिग रहा। जब रानी कामयाब न हुई, तो उस ने राजा के पास असराज के बारे में झूठे दोष लगा दिए। राजा ने

क्रोध में आकर पुत्र को फाँसी की सज़ा का हुक्म दे दिया।

राजा का मंत्री समझदार था। उस ने असराज को जान से तो न मारा, परन्तु उस का एक हाथ काट कर उसको शहर से बाहर किसी जंगल में एक कुँए पर छोड़ दिया। वहाँ से बनजारों का एक समूह गुज़रा। उन में से एक बनजारे ने असराज को अपने साथ ले लिया। बनजारे किसी और राज्य में से गुज़रे और वहाँ पर असराज को एक धोबी के पास बेच दिया।

असराज धोबी की सेवा में दिन व्यतीत करने लगा। कुछ समय बाद उस शहर का राजा सन्तान-हीन ही मर गया। मंत्रियों ने फैसला किया कि सुबह जो मनुष्य सब से पहले शहर के द्वार पर दस्तक दे, उसे राज्य दे दिया जाए। असराज के दिन फिर गए, धोबी का बैल कहीं गुम गया। बैल की तलाश में असराज प्रातः ही उठ कर चल पड़ा और उस द्वार पर जा दस्तक दी। इस तरह उसे उस देश का राजा बना दिया गया।

राज-पुत्र होने के कारण असराज में कुशल राज प्रबन्धक होने के गुण मौजूद थे। कुछ समय उपरान्त पड़ौसी देशों में अकाल पड़ गया, परन्तु असराज का देश बचा रहा। दूसरे देशों के लोग उसके देश में अनाज लेने के लिए आने लग पड़े। इसके पिता का मन्त्री भी आया। असराज ने उसे पहचान लिया। दोनों आपस में बड़े प्रेम से मिले। असराज ने मन्त्री की खूब सेवा की और कुछ दिन अपने पास रखकर अपने पिता के देश-वासियों के लिए बहुत सा अनाज बिना मुल्य ही भेंट कर दिया।

मन्त्री ने वापिस जाकर सारा वृत्तान्त राजा को सुनाया और उसे प्रेरणा की कि वह अपना राज्य भी उसे सौंप दे। राजा को अपने बेटे के नेक आचरण का पहले ही पता लग चुका था। उसने अपने मन्त्री की यह सलाह मान ली और अपने बेटे को बुलवा कर अपना राज्य भी उसके हवाले कर दिया।

ढाडियों ने यह सारा वृत्तान्त वार में जोड़कर राजा के दरबार में गाया

तथा इनाम प्राप्त किये। तब से ही ढाडी यह वार गाते चले आ रहे हैं।

सलोकु मः १॥

बलिहारी गुर आपणे दिउहाड़ी सद वार ॥
जिनि माणस ते देवते कीए करत न लागी वार ॥१॥

शब्दार्थ : दिउहाड़ी—दिन में। सद वार—सौ बार। जिनि—जिस (गुरु) ने। माणस ते—मनुष्यों से। करत—बनाते हुए। वार—देर।१।

अर्थ : मैं अपने गुरु पर (एक) दिन में सौ बार कुर्बान होता हूँ, जिस (गुरु) ने मनुष्यों से देवते बना दिए और ऐसा करते समय उसे (ज़रा) देर न लगी।१।

महला २॥

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार ॥
एते चानण होदिआ गुर बिनु घोर अंधार ॥२॥

शब्दार्थ : सउ चंदा—एक सौ चन्द्रमा। एते चानण—इतने प्रकाश। गुर बिनु—गुरु के बिना। घोर अंधार—घोर अंधेरा।२।

अर्थ : अगर (एक) सौ चन्द्रमा और हज़ार सूर्य चढ़ जायें (भाव—प्रकाश करने वाले इतने चन्द्रमा सूर्य आदि ग्रह आकाश में एक साथ प्रक्ट हों), गुरु के बिना (फिर भी) घोर अंधेरा है।२।

मः १॥

नानक गुरू न चेतनी मनि आपणै सुचेत ॥
छुटे तिल बूआड़ जिउ सुंञे अंदरि खेत ॥
खेतै अंदरि छुटिआ कहु नानक सउ नाह ॥
फलीअहि फुलीअहि बपुड़े भी तन विचि सुआह ॥३॥

शब्दार्थ : नानक—हे नानक ! न चेतनी—याद नहीं करते। मनि

आपणै—अपने मन में। छुटे—छोड़े हुए। तिल बूआड़ जिउ—व्यर्थ तिलों की भाँति। छुटिआ—छोड़े हुए। सउ—(एक) सौ। नाह—मालक। बपुड़े—बेचारे। बुआड़—सड़े हुए (सं: व्युष्ट)। सुआह—राख़।३।

नोट : उपरोक्त श्लोक न: २ में 'सउ चंदा' पद आया है। इस श्लोक में 'सउ नाह' पद प्रयोग हुआ है। कई सज्जन पहले 'सउ' का अर्थ 'सैंकड़ा' करते हैं और दूसरे 'सउ' का अर्थ 'सहु' 'खस्म' करते हैं। यह पूरी तरह से अशुद्ध है। दोनों स्थानों पर 'सउ' का शब्द-जोड़ एक ही है। दूसरे स्थान पर 'सउ' का उच्चारण करते समय 'ह' का उच्चारण करके 'सहु' बोलना बड़ी भूल है। इस दूसरे 'सउ' का उच्चारण और अर्थ 'सहु' करने वाले सज्जन शब्द 'नाह' का अर्थ 'नहीं' करते हैं। यह एक और बड़ी भूल है। इस तरह वह सज्जन इस शब्द 'नाह' को क्रिया-विशेषण (Adverb) बना लेते हैं। गुरवाणी को व्याकरण अनुसार पढ़ने वाले सज्जन जानते हैं कि जब कभी यह शब्द क्रिया-विशेषण हो तो इस का रूप 'नाहि' होता है, भाव इस के अन्त में (ि) होती है, क्योंकि यह 'नाहि' शब्द वास्तव में संस्कृत के दो शब्दों (न) और (हि) के जोड़ से बना हुआ है।

शब्द 'नाह' संस्कृत के शब्द 'नाथ' का प्राकृत रूप है। 'थ' से 'ह' क्यों हो गया, इस विष्य पर *गुरबाणी व्याकरण* (पंज़ाबी) में विस्तार से चर्चा की गई है। गुरवाणी में कई स्थानों पर शब्द 'नाह' आया है, जिस का अर्थ है 'खसम' व 'मालिक'। नाहु-एक मालक (एक-वचन, Singular)। नाह-(ज़्यादा) मालक (बहु-वचन, Plural)। देखें *गुरबाणी व्याकरण*।

अर्थ : हे नानक! (जो मनुष्य) गुरु को याद नहीं करते और अपने आप में चतुर (बने हुए) हैं, वह ऐसे हैं जैसे किसी उजड़े हुए खेत में अंदर से गले-सड़े तिल लावारिस पड़े हुए हों। हे नानक! (बेशक) कहो कि खेत में पड़े हुए इन लावारिस और सड़े हुए तिलों के सौ मालिक हैं, वह बेचारे फूलते भी हैं (भाव, उन्हें फूल भी आते हैं), फलते भी हैं, फिर भी उन के अंदर (भाव, उनकी फली में) तिलों की जगह राख़ ही होती है।३।

स्पष्टीकरण : शब्द 'सउ' का अर्थ 'सहु' और 'नाह' का अर्थ 'नाहि' करने वाले सज्जन, शायद यहाँ यह आपत्ति करें कि लावारिस पौधों के सौ मालिक कैसे हो सकते हैं। इस के उत्तर में यह निवेदन है कि किसी सज्जन के अपने मन के विचारों की पुष्टि करने के लिए गुरवाणी के अर्थ गुरवाणी व्याकरण के विरुद्ध नहीं किये जा सकते। वैसे यह बात है भी बड़ी साफ़। कभी कभी बादलों की बिजली के कारण चने की फसल जल जाती है। न तो उन में दाने आते हैं और न ही वह पशुओं के खाने के योग्य रहती है। किसान इस फसल को खेत में पड़ा रहने देते हैं। तब गाँवों के कई मज़दूर और गरीब ज़रूरतमंद लोग प्रत्येक दिन जाकर ईंधन के लिये इसे ले जाते हैं। वहाँ यह बात देखी जाती है कि एक किसान के मालिक न होने से, कई लोग इस फसल के मालिक बन बैठते हैं।

इसी तरह जब हम अपने मन में चतुर बनकर गुरु को मन से भूल जाते हैं, गुरु की राहनुमाई की ज़रूरत नहीं समझते, तो कामादिक सौ मालिक इस मन के बन जाते हैं। भाव, मन कभी किसी विकार और कभी किसी विकार का शिकार बनता रहता है।

पउड़ी ॥

आपीनै् आपु साजिओ आपीनै् रचिओ नाउ ॥
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ ॥
दाता करता आपि तूं तुसि देवहि करहि पसाउ ॥
तूं जाणोई सभसै दे लैसहि जिंदु कवाउ ॥
करि आसणु डिठो चाउ ॥१॥

शब्दार्थ : आपीनै्—आप ही ने, (अकाल पुरख) ने आप ही। आपु—अपने आप को। नाउ—नाम, महिमा। दुयी—दूसरी। साजीऐ—बनाई है। करि—कर के, बना के। चाउ—तमाशा। तुसि—प्रसन्न होकर। देवहि—तू देता है। करहि—तू करता है। पसाउ—प्रसाद, कृपा। जाणोई—जानने

वाला। सभसै—सभी का। दे—दे कर। लैसहि—ले लेगा। जिंदु कवाउ—जान की पौशाक, भाव, शरीर।१।

अर्थ : अकाल पुरख ने स्वयं ही अपने आप को बनाया और स्वयं ही अपनी महिमा बनाई। फिर, उसने कुदरत रची, (और उस में) आसन जमा कर (भाव, कुदरत में व्यापक होकर) (इस जगत का) ख़ुद तमाशा देखने लगा।

(हे प्रभु!) तू स्वयं ही (जीवों को) पदार्थ देने वाला है और स्वयं ही (इनका) निर्माता है। (तू स्वयं ही) प्रसन्न होकर (जीवों को) देता है और कृपा करता है। तू सभी जीवों का ज्ञाता है। जान और शरीर दे कर (तुम स्वयं ही) ले लोगे (भाव, तुम स्वयं ही जान और शरीर देते हो, स्वयं ही फिर ले लेते हो)। तुम (कुदरत में) व्यापक होकर तमाशा देख रहे हो।१।

सलोकु मः १ ॥

सचे तेरे खंड सचे ब्रहमंड ॥
सचे तेरे लोअ सचे आकार ॥
सचे तेरे करणे सरब बीचार ॥
सचा तेरा अमरु सचा दीबाणु ॥
सचा तेरा हुकमु सचा फुरमाणु ॥
सचा तेरा करमु सचा नीसाणु ॥
सचे तुधु आखहि लख करोड़ि ॥
सचै सभि ताणि सचै सभि जोरि ॥
सची तेरी सिफति सची सालाह ॥
सची तेरी कुदरति सचे पातिसाह ॥
नानक सचु धिआइनि सचु ॥
जो मरि जंमे सु कचु निकचु ॥१॥

शब्दार्थ : सचे—सदा स्थिर रहने वाले। खंड—टुकड़े, हिस्से, सृष्टि के हिस्से। ब्रहमंड—सृष्टि, जगत। लोअ—चौदह लोक। आकार—स्वरूप, शक्ल, भाँति भाँति के जीव-जंतु, पदार्थ आदि जो दिखाई दे रहे हैं। करणे—काम। सरब—सभी। अमरु—हुक्म, पातशाही। दीबाणु—दीवान, कचहरी, दरबार। नीसाणु—निशान, जल्वा। करमु—कृपा। सचे—(वह जीव) सच्चे हैं, सदा रहने वाले हैं। सचै—सच्चे के (में)। ताणि—शक्ति में। सचै जोरि—सच्चे के ज़ोर में। सचे पातिसाह—हे सच्चे पातिशाह! कुदरति—रचना। मरि—मर कर। मरि जंमे—मर कर जन्में, भाव, मरते हैं और पैदा होते हैं, जन्म-मरन के चक्कर में रहते हैं। सु—वह जीव। कचु निकचु—निरोल कच्चे।१।

अर्थ : (हे सच्चे पातिशाह! तेरे पैदा किए हुए) खण्ड और ब्रह्मण्ड सच्चे हैं (भाव, खण्ड और ब्रह्मण्ड बनाने का यह सिलसिला सदा के लिए अटल है)।

तेरे (बनाए) चौदह लोक और (बेअंत) आकार भी सदा स्थिर रहने वाले हैं, तेरे काम और तेरे विचार नाश-रहत हैं।

हे पातिशाह! तेरी पातिशाही और तेरा दरबार अटल है, तेरा हुक्म और तेरा (शाही) फ़ुर्मान भी अटल है। तेरी कृपा सदा के लिए स्थिर है और तेरी रहमतों का निशान (भाव, यह अनगिनत पदार्थ जो तुम जीवों को दे रहे हो) सदैव रहने वाले हैं।

लाखों करोड़ों जीव, जो तुम्हें याद कर रहे हैं, सच्चे हैं (भाव, अनगिनत जीवों का तुम्हें याद करना, यह भी तेरा चलाया हुआ ऐसा काम है जो सदा चलता रहेगा)। (यह खण्ड, ब्रह्मण्ड, लोक, आकार, जीव-जंतु आदि) सारे ही सच्चे हरी की शक्ति और ज़ोर में हैं। (भाव, इन सब का आधार प्रभु स्वयं है)।

तेरी महिमा करनी तेरा एक निरन्तर सिलसिला है; हे सच्चे पातिशाह! यह समूची रचना भी तेरा एक न समाप्त होने वाला प्रबन्ध है।

हे नानक ! जो जीव उस अविनाशी प्रभु का सुमिरण करते हैं, वह भी उसी का रूप हैं, पर जो जन्म-मरन के चक्कर में हैं, वह (अभी) बिल्कुल कच्चे हैं (भाव, वह वास्तविक ज्योति का रूप नहीं हुए।१।

स्पष्टीकरण : शब्द 'सचु' संस्कृत शब्द 'सत्य' का पंजाबी रूप है, 'सत्य' का अर्थ है 'असली', जो अस्तित्व वाला है।

कई मतों वाले सोचते हैं कि यह जगत असल में कुछ भी नहीं है, यह मात्र भ्रम है। गुरु नानक जी इस श्लोक में बताते हैं कि खण्डों, ब्रह्मण्डों आदि का यह सिलसिला भ्रम नहीं है, अस्तित्व वाले प्रभु का यह अस्तित्व वाला प्रसार है। पर यह सारा खेल उसी प्रभु के हाथ में है। समूचे तौरपर यह समूची कुदरत, उस प्रभु का एक अटल प्रबन्ध है, परन्तु इस में जो भिन्न भिन्न पदार्थ, जीव-जन्तुयों के शरीर आदि नाशवान हैं। हाँ, जो उस का भजन करते हैं वह उसी का रूप हो जाते हैं।

म: १ ॥

वडी वडिआई जा वडा नाउ ॥
वडी वडिआई जा सचु निआउ ॥
वडी वडिआई जा निहचल थाउ ॥
वडी वडिआई जाणै आलाउ ॥
वडी वडिआई बुझै सभि भाउ ॥
वडी वडिआई जा पुछि न दाति ॥
वडी वडिआई जा आपे आपि ॥
नानक कार न कथनी जाइ ॥
कीता करणा सरब रजाइ ॥२॥

शब्दार्थ : जा—जिसका, जिस प्रभु का, कि उस प्रभु का। नाउ—नाम, महिमा, यश। निहचल—अचल, न चलने वाला, अविनाशी।

आलाउ—आलाप, जीवों के बोल, जीवों की प्रार्थना। भाउ—हाल, तरँगें। जा—कि वह। पुछि—(किसी को) पूछ कर। आपे आपि—आप ही आप है, भाव, स्वतन्त्र है। कार—उसका बनाया हुआ खेल। कीता करणा—उसकी बनाई हुई सृष्टि। रजाइ—प्रभु की आज्ञा में।२।

अर्थ : उस प्रभु की महिमा नहीं की जा सकती, जिसका नाम बड़ा है। प्रभु का यह एक बड़ा गुण है कि उसका न्याय (सदा) अटल है। उसकी एक बड़ी महिमा है कि उसका आसन स्थिर है। प्रभु की एक बड़ी उपमा है कि वह जीवों की प्रार्थनाएँ जानता है और सभी के दिलों का हाल समझता है।

प्रभु की यह एक उच्च महिमा है कि वह किसी के परामर्श से (जीवों को) दात नहीं दे रहा (अपने आप बेहिसाब दातें देता है), (क्योंकि) उस जैसा और कोई नहीं है।

हे नानक! प्रभु की कुदरत ब्यान नहीं की जा सकती, समूची रचना उस ने अपनी आज्ञा में रची है।२।

महला २ ॥

इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु ॥
इकन्हा हुकमि समाइ लए इकन्हा हुकमे करे विणासु ॥
इकन्हा भाणै कढि लए इकन्हा माइआ विचि निवासु ॥
एव भि आखि न जापई जि किसै आणै रासि ॥
नानक गुरमुखि जाणीऐ जा कउ आपि करे परगासु ॥३॥

शब्दार्थ : सचै की है कोठड़ी—हमेशा स्थिर रहने वाले प्रभु के रहने की जगह है। इकन्हा—कई जीवों के। हुकमि—अपनी आज्ञानुसार। समाइ लए—अपने में समा लेता है। भाणै—अपनी मर्ज़ी अनुसार। कढि लए—(माया के मोह में से) निकाल लेता है। एव भि—इस तरह भी, यह बात भी। आखि न जापई—कही नहीं जाती। जि—कि। किसै—किस जीव को। आणै

रासि—सीधे रास्ते पर चलाता है। गुरमुखि—गुरु द्वारा। जाणीऐ—समझ आती है। जा कउ—जिस मनुष्य पर।३।

अर्थ : यह जगत प्रभु का निवास स्थान है, प्रभु इस में बस रहा है। कई जीवों को अपनी आज्ञानुसार (इस संसार-सागर से बचा कर) अपने चरणों से जोड़ लेता है और कई जीवों को अपनी आज्ञानुसार ही डुबो देता है। कुछ प्राणियों को अपनी मर्ज़ी से माया के मोह में से निकाल लेता है, कुछ को इसी में फँसा रखता है।

यह कहा नहीं जा सकता कि प्रभु किसको मुक्त करता है। हे नानक! जिस (भाग्यशाली) मनुष्य को बुद्धि देता है, उसको गुरु द्वारा समझ आ जाती है।३।

पउड़ी ॥

नानक जीअ उपाइ कै लिखि नावै धरमु बहालिआ ॥
ओथै सचे ही सचि निबड़ै चुणि वखि कढे जजमालिआ ॥
थाउ न पाइनि कूड़िआर मुह काल्है दोजकि चालिआ ॥
तेरै नाइ रते से जिणि गए हारि गए सि ठगण वालिआ ॥
लिखि नावै धरमु बहालिआ ॥२॥

शब्दार्थ : जीअ उपाइ कै—जीवों को पैदा करके। धरमु—धर्मराज। लिखि नावै—जीवों के कर्मों का लेखा लिखने के लिए। ओथै—धर्मराज के आगे। निबड़ै—मुकम्मल होती है। चुणि—चुन कर। जजमालिआ—कोहड़ी जीव, मन्दकर्मी जीव। सचे ही सचि—केवल सत्य द्वारा, भाव वहाँ फैसले का माप 'शुद्ध सच' है।

नोट : इस पउड़ी की दूसरी पंक्ति का पाठ प्रायः ग़लत किया जाता है। 'सचे ही सचि' के स्थान पर 'सचो ही सचु' प्रचलित हो गया है। व्याकरण से नावाकिफ होने के कारण 'सचे ही सचि' अशुद्ध प्रतीत होने लग पड़ा। शायद किसी सज्जन को यह विचार भी आया हो कि छपाई

की ग़लती से 'सचे ही सचि' छप गया है। होना 'सचो ही सचु' चाहिये था। कई सज्जन गुटकों और टीकों में 'सचे ही सचि' के स्थान पर 'सचो ही सचु' छपवाने लग पड़े।

थाउ न पाइनि—स्थान प्राप्त नहीं करते। मुह कालै्—मुँह काला करके। दोजकि—नरक में। चालिआ—धकेले जाते हैं, डाले जाते हैं। तेरै नाइ—तेरे नाम में। जिणि—जीत कर। हारि—(बाज़ी) हार कर। सि—वह मनुष्य। ठगण वालिआ—धोखा देने वाले।२।

अर्थ : हे नानक! जीवों को पैदा करके प्रमात्मा ने धर्मराज को (उनके सिर) ऊपर बिठाया है कि जीवों के कर्मों का लेखा लिखता रहे। उसकी कचहरी में पूर्णतया सत्य के द्वारा ही फैसला होता है, (वहाँ उसे सम्मान मिलता है जिसके पास 'सत्य' होता है) और कुकर्मी जीवों को चुन कर अलग कर दिया जाता है। झूठ व धोखा करने वालों को वहाँ स्थान नहीं मिल पाता, (उनका) मुँह काला करके उन्हें नरक में धकेल दिया जाता है।

(हे प्रभु!) जो मनुष्य तेरे नाम में रंगे हुए हैं, वे (यहाँ से) बाज़ी जीत कर जाते हैं और धोखाधड़ी करने वाले (मनुष्य-जन्म की बाज़ी) हार कर जाते हैं। (तुम ने, हे प्रभु!) धर्मराज को (जीवों के कर्मों का) लेखा लिखने के लिए बिठा रखा है।२।

सलोक मः १ ॥

विसमादु नाद विसमादु वेद ॥
विसमादु जीअ विसमादु भेद ॥
विसमादु रूप विसमादु रंग ॥
विसमादु नागे फिरहि जंत ॥
विसमादु पउणु विसमादु पाणी ॥
विसमादु अगनी खेडहि विडाणी ॥

विसमादु धरती विसमादु खाणी ॥
विसमादु सादि लगहि पराणी ॥
विसमादु संजोगु विसमादु विजोगु ॥
विसमादु भुख विसमादु भोगु ॥
विसमादु सिफति विसमादु सालाह ॥
विसमादु उझड़ विसमादु राह ॥
विसमादु नेड़ै विसमादु दूरि ॥
विसमादु देखै हाजरा हजूरि ॥
वेखि विडाणु रहिआ विसमादु ॥
नानक बुझणु पूरै भागि ॥१॥

शब्दार्थ : विसमादु—***नोट :*** संस्कृत पुस्तकों में साधारण तौर पर काव्य के आठ रस (वलवला, तरङ्ग) माने गये हैं : (शृंगार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स तथा अदभुत)। परन्तु कई बार 'शांत रस' मिला कर नौ रस माने जाते हैं।

अदभुत रस क्या है ? हैरानगी, आश्चर्य, विस्माद। प्रकृति के बेअन्त रङ्गा-रङ्ग पदार्थों को देखकर मनुष्य के मन में एक हैरानगी पैदा होती है, जिससे अदभुत रस उत्पन्न होता है।

[प्रकृति के रँग-बिरँगे पदार्थों को देखकर मनुष्य के मन में एक हैरानगी होती है। इन पदार्थों को देखकर मनुष्य के मन में एक कंपकंपी सी होती है, इस कंपकंपी को 'विसमाद' कहा जाता है।]

नाद—आवाज़, राग। वेद—हिन्दु धर्म के धर्म-ग्रंथ। भेद—जीवों की विभिन्न किस्में। अगनी खेडहि विडाणी—अग्नियाँ जो अजीबो-गरीब खेल करती हैं (अग्नियाँ कई प्रकार की मानी जाती हैं : बड़वा अग्नि, जो सागर में है, दावा अग्नि—जंगल की अग्नि, जठर-अग्नि—पेट की अग्नि,

कोप-अग्नि, चिन्ता-अग्नि, ज्ञान-अग्नि, राज-अग्नि। हवन की अग्नियाँ तीन प्रकार की हैं: गार्हपत्य, आहवनीय, दाक्षिणय।)

खाणी—सृष्टि की रचना की चार खानें: अंड, जेर, उदक, सेत (अंडा, जेर, पानी, पसीना), इन से पैदा होने वाले जीवों को क्रमश: अंडज, जेरज, उतभुज, सेतज कहा जाता है। सादि—स्वाद में। संजोगु—मेल, जीवों का आपस में मिलना। विजोगु—बिछुड़ना। भोगु—पदार्थों का प्रयोग करना। उझड़—कुमार्ग। विडाणु—अश्चर्यजनक काम। वेखि—देखकर। रहिआ विसमादु—विस्माद पैदा हो रहा है, मन में कंपकंपी हो रही है। बुझणु—(इस 'विडाणु' को) समझना है।१।

अर्थ : हे नानक! (प्रभु की) अदभुत कुदरत को सौभाग्य से ही समझा जा सकता है, इसे देखकर मन में एक कंपकंपी सी हो रही है।

कई राग, कई वेद, अनगिनत जीव और जीवों की विभिन्न किस्में, पदार्थों के कई रूप रँग—यह सब देखकर विस्माद की अवस्था बन रही है।

कई जंतु (हमेशा) नंगे ही घूम रहे हैं, कहीं पवन है और कहीं पानी है, कहीं कई अग्नियाँ अदभुत खेल कर रही हैं, धरती और धरती के जीवों की उत्पत्ति की चार खानें—यह कुदरत देखकर मन में कंपकंपी हो रही है।

जीव पदार्थों के स्वाद में लगे हुए हैं, कहीं जीवों का मिलन हो रहा है, कहीं बिछुड़ रहे हैं, कहीं भूख (दुख दे रही है), कहीं पदार्थों को भोगा जा रहा है, कहीं (प्रभु की) महिमा का गुण-गान हो रहा है, कहीं (लोग) कुमार्ग पर चल रहे हैं; इन सब को देखकर मन में हैरत हो रही है।

(कोई कहता है, प्रभु) नज़दीक है, (कोई कहता है) दूर है, (कोई कहता है कि) सर्व-व्यापक है और जीवों की देखभाल कर रहा है—इस सबको देखकर मन में उथल पुथल सी हो रही है। हे नानक! इस ईश्वरीय तमाशे को बड़े भाग्य से ही समझा जा सकता है।१।

महला १ ॥

कुदरति दिसै कुदरति सुणीऐ कुदरति भउ सुख सारु ॥
कुदरति पाताली आकासी कुदरति सरब आकारु ॥
कुदरति वेद पुराण कतेबा कुदरति सरब वीचारु ॥
कुदरति खाणा पीणा पैन्णु कुदरति सरब पिआरु ॥
कुदरति जाती जिनसी रंगी कुदरति जीअ जहान ॥
कुदरति नेकीआ कुदरति बदीआ कुदरति मानु अभिमानु ॥
कुदरति पउणु पाणी बैसंतरु कुदरति धरती खाकु ॥
सभ तेरी कुदरति तूं कादिरु करता पाकी नाई पाकु ॥
नानक हुकमै अंदरि वेखै वरतै ताको ताकु ॥२॥

शब्दार्थ : कुदरति—कला, अदभुत तमाशा। दिसै—जो दिख रहा है। सुख सारु—सुखों का सार। सरब आकारु—सारा दृश्यमान स्वरूप, सारा जगत। कतेबा—मुसलमानों व ईसाईयों की धर्म-पुस्तकें। सरब वीचारु—सारी विचार। जीअ जहान—जगत के जीवों में। मानु—आदर। अभिमानु—अहँकार। बैसंतरु—आग। पाकी—पवित्र। नाई—बड़ाई, महिमा। पाकु—(तुम स्वयं) पवित्र (हो)। वेखै—देखभाल करता है। ताको ताकु—अकेला आप ही आप। वरतै—मौजूद है।२।

अर्थ : (हे प्रभु!) जो कुछ दिख रहा है और सुनाई दे रहा है, यह सब तेरी ही कला है। यह भय जो सभी सुखों का सार है, यह भी तेरी ही कुदरत है। पातालों व आकाशों में तेरी ही कुदरत है, यह सारा दृश्यमान जगत तेरा ही अदभुत खेल है।

वेद, पुराण व कतेब की सारी विचार भी तेरी कुदरत है; (जीवों का) खाना, पीना, पहनना और प्यार (का जज़्बा) यह सब तेरी ही कुदरत है।

जातियों में, नसलों में, रंगों में, जगत के जीवों में तेरी ही कुदरत

है, (जगत में) कहीं भलाई के काम हो रहे हैं, कहीं विकार हो रहे हैं, कहीं किसी को आदर मिल रहा है, कहीं अहँकार प्रधान है, यह सब तेरा अदभुत तमाशा है।

पवन, पानी, अग्नि, धरती और मिट्टी (तत्व) सब तेरा ही तमाशा हैं। (हे प्रभु!) सब तेरी कला (शक्ति) चल रही है, तुम कुदरत के मालिक हो, तुम इस खेल के स्रष्टा हो, तेरी महिमा पवित्र है, तुम स्वयं पवित्र (अस्तित्व वाले) हो।

हे नानक! प्रभु (इस सारी कुदरत को) अपनी आज्ञा में (रखकर) (सबकी) देखभाल कर रहा है, (प्रत्येक जगह अकेला) आप ही आप मौजूद है।२।

पउड़ी ॥

आपीनै् भोग भोगि कै होइ भसमड़ि भउरु सिधाइआ ॥
वडा होआ दुनीदारु गलि संगलु घति चलाइआ ॥
अगै करणी कीरति वाचीऐ बहि लेखा करि समझाइआ ॥
थाउ न होवी पउदीई हुणि सुणिऐ किआ रूआइआ ॥
मनि अंधै जनमु गवाइआ ॥३॥

शब्दार्थ : भोग—पदार्थों के भोग। भोगि कै—प्रयोग करके। होइ—होकर। भसमड़ि—भस्म की ढेरी, मिट्टी की ढेरी। भउरु—आत्मा। वडा होआ—मर गया। दुनीदारु—दुनियादार। गलि—गले में। घति—डाल कर। चलाइआ—आगे करके। अगै—आगे, परलोक में। करणी—कमाई। कीरति—महिमा, कीर्ति। वाचीऐ—आँकी जाती है। बहि—बैठकर, धैर्य से। थाउ न होवी—कोई बचाव नहीं होता। पउदीई—जूतों की मार पड़ते समय। हुणि—इस समय जब सज़ा मिलती है। किआ रूआइआ—कौन सी पुकार। सुणिऐ—सुना जाता है। मनि—मन ने। अंधै—अन्धे ने। गवाइआ—व्यर्थ कर लिया।३।

अर्थ : प्रभु स्वयं ही (जीव रूप में) पदार्थों के स्वाद का आनन्द उठाता है, (यह भी उसकी अदभुत कुदरत है)। (शरीर) मिट्टी की ढेरी हो जाता है, (जीवात्मा रूपी) भंवर (शरीर को छोड़कर) चल पड़ता है। (इस तरह का) दुनिया के धन्धों में फँसा जीव (जब) मरता है, (इसके) गले में ज़ंजीर डालकर आगे आगे चलाया जाता है (भाव यह है कि माया में फँसे जीव जगत को छोड़ना नहीं चाहते)।

परलोक में (भाव, धर्मराज के दरबार में—देखें पउड़ी २) प्रभु की कीर्ति रूपी कमाई ही काम आती है, वहाँ (जीव के कर्मों का) लेखा अच्छी तरह (इसे) समझा दिया जाता है।

(माया में फँसे होने के कारण) वहाँ इसे सज़ा मिलते समय इसका बचाव नहीं होता, उस समय इसकी कोई भी विनती या पुकार नहीं सुनी जाती।

मूर्ख मन (वाला जीव) अपना (मनुष्य) जीवन व्यर्थ गँवा लेता है।३।

सलोक मः १ ॥

भै विचि पवणु वहै सदवाउ ॥
भै विचि चलहि लख दरीआउ ॥
भै विचि अगनि कढै वेगारि ॥
भै विचि धरती दबी भारि ॥
भै विचि इंदु फिरै सिर भारि ॥
भै विचि राजा धरम दुआरु ॥
भै विचि सूरजु भै विचि चंदु ॥
कोह करोड़ी चलत न अंतु ॥
भै विचि सिध बुध सुरनाथ ॥
भै विचि आडाणे आकास ॥

भै विचि जोध महाबल सूर ॥
भै विचि आवहि जावहि पूर ॥
सगलिआ भउ लिखिआ सिरि लेखु ॥
नानक निरभउ निरंकारु सचु एकु ॥१॥

स्पष्टीकरण : *सत्यार्थ प्रकाश* के कर्त्ता ने गुरु नानक साहिब पर यह दोष लगाया है कि वह संस्कृत नहीं जानते थे, पर वे अपने आप को संस्कृत का विद्वान प्रक्ट करने का प्रयत्न करते थे, क्योंकि उन्होंने संस्कृत 'भय' की जगह 'भउ' प्रयोग किया है।

इस विषय से सम्बन्धित जो सज्जन और जानकारी प्राप्त करना चाहते हों वे मेरे *गुरबाणी व्याकरण* के अंक 'वर्ण-बोध' को पढ़ें।

शब्दार्थ : भै विचि—डर में। पवणु वहै—हवा चलती है। सदवाउ—हमेशा ही। चलहि—चलते हैं। कढै वेगारि—सेवा करती है। भारि—भार के नीचे। इंदु—इन्द्र देवता, बादल। फिरै—घूमता है। सिर भारि—सिर के बल। राजा धरम दुआरु—धर्मराज का द्वार। कोह करोड़ी—करोड़ों कोस। सिध—जिन महात्माओं ने अणिमा आदि आठ सिद्धियों को प्राप्त किया हो, उन्हें 'सिद्ध' कहा जाता था, पूर्ण योगी। बुध—ज्ञानी, जो जगत के मायक बन्धनों से मुक्त हैं। आडाणे—तने हुए। महाबल—महाबली। आवहि—(जो भी जीव जगत में) आते हैं। पूर—सभी के सभी जीव जो इस संसार-सागर में ज़िन्दगी रूपी नाव में बैठे हैं। सगलिआ सिरि—सभी जीवों के सिर पर। लेखु लिखिआ—भय रूपी लेख लिखा हुआ है।१।

अर्थ : हवा हमेशा ही प्रभु के डर में चल रही है। लाखों नदियाँ भी (उसी के) डर में बह रही हैं। अग्नि जो सेवा कर रही है, यह भी प्रभु के डर में ही है। सारी धरती प्रभु के भय के कारण भार के नीचे दबी पड़ी है।

प्रभु के भय में इन्द्र देवता भी सिर के बल घूम रहा है (भाव यह है कि मेघ भी उसकी आज्ञा में उड़ रहे हैं)। धर्मराज का दरबार भी प्रभु के भय में है।

सूर्य व चँद्रमा भी प्रभु की आज्ञा में हैं, (वह) करोड़ों कोस चलते हैं (परन्तु उनके) सफर का अंत नहीं होता।

सिद्ध, बुद्ध, देवता व नाथ—सभी प्रभु के भय में हैं। यह ऊपर तने हुए आकाश (जो दिखाई देते हैं, यह भी) भय में हैं।

बड़े बड़े बली योद्धे व वीर सभी तेरे भय में हैं। जो, समूहों के समूह जीव जगत में पैदा होते हैं व मरते हैं, सभी (प्रभु के) भय में हैं।

सभी जीवों के मस्तक पर भय रूपी लेख लिखा हुआ है, भाव, यह है कि प्रभु का नियम ही ऐसा है कि सभी उसके भय में हैं। हे नानक! केवल एक सच्चा प्रभु ही भय-रहत है।१।

म: १ ॥

नानक निरभउ निरंकारु होरि केते राम रवाल ॥
केतीआ कंन् कहाणीआ केते बेद बीचार ॥
केते नचहि मंगते गिड़ि मुड़ि पूरहि ताल ॥
बाजारी बाजार महि आइ कढहि बाजार ॥
गावहि राजे राणीआ बोलहि आल पताल ॥
लख टकिआ के मुंदड़े लख टकिआ के हार ॥
जितु तनि पाईअहि नानका से तन होवहि छार ॥
गिआनु न गलीई ढूढीऐ कथना करड़ा सारु ॥
करमि मिलै ता पाईऐ होर हिकमति हुकमु खुआरु ॥२॥

शब्दार्थ : होरि—(निरंकार के बिना) और सभी। रवाल—धूल (भाव, तुच्छ)। केतीआ—कितनी ही, बेअंत। कंन् कहाणीआ—कृष्ण जी

की कथाएँ। गिड़ि मुड़ि—फिर फिर से, दुबारा। बाजारी—रासधारी। आइ कढहि बाजार—आ कर रास रचाते हैं। आल—चाल, ठग्गी। आल पताल—पाताल के आल, चालाकी भरे गहरे बोल, वह बोल जो दूसरों की समझ में न आएँ। मुंदड़े—कुण्डल, सुन्दर सुन्दर बाले। जितु तनि—जिस शरीर पर। पाईअहि—पहने जाते हैं। गलीई—बातों से। कथना—वर्णन करना। सारु—लोहा। करमि—(प्रभु की) कृपा से। हिकमति—चालाकी, ढंग।२।

अर्थ : हे नानक! एक निरंकार ही भय-रहत है, (अवतार पुरुष) राम जी जैसे कई और (उस प्रभु के सन्मुख) तुच्छ हैं, (उस प्रभु के ज्ञान की तुलना में) कृष्ण (जी) की कई कथाएँ और वेदों के कई विचार तुच्छ हैं।

(उस प्रभु का ज्ञान प्राप्त करने के लिए) कई मनुष्य भिखारी बन कर नृत्य करते हैं और कई तरह के साज़ बजाते हैं, रासधारी भी बाज़ारों में आकर रासें रचाते हैं, राजाओं और रानियों के भेस बनाकर गाते हैं और (मुख से) कई प्रकार के बोल बोलते हैं, लाखों रुपयों के (भाव, कीमती) कुण्डल व हार पहनते हैं, परन्तु हे नानक! (वह बेचारे यह नहीं जानते कि यह गहने) जिस जिस तन पर पहने जाते हैं, वह एक दिन राख़ हो जाते हैं (और इस नाचने गाने से 'ज्ञान' कैसे मिल सकता है ?)।

ज्ञान केवल बातें करने से नहीं ढूँढा जा सकता, (ज्ञान कैसे मिल सकता है—इस बात का) वर्णन करना ऐसे है जैसे लोहा (चबाना, भाव कि बहुत मुश्किल है)। (हाँ) प्रभु की कृपा द्वारा मिल जाए तो मिल जाता है, और कोई रास्ता नहीं।२।

पउड़ी ॥

नदरि करहि जे आपणी ता नदरी सतिगुरु पाइआ ॥
एहु जीउ बहुते जनम भरंमिआ ता सतिगुरि सबदु सुणाइआ ॥
सतिगुर जेवडु दाता को नही सभि सुणिअहु लोक सबाइआ ॥

**सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिन्ही विचहु आपु गवाइआ ॥
जिनि सचो सचु बुझाइआ ॥४॥**

शब्दार्थ : नदरि—कृपा की नज़र। करहि—(हे प्रभु! तू) करे। नदरी—तेरी कृपा से। भरमिआ—भटक चुका। सतिगुरि—सतिगुरु ने। सभि लोक सबाइआ—हे सभी लोगो! सतिगुरि मिलिऐ—अगर सतिगरु मिले, (कैसा सतिगुरु ? उत्तर : 'जिनि सचो सचु बुझाइआ')। सचु—सदा कायम, स्थिर रहने वाला प्रभु। जिन्ही—जिन मनुष्यों ने। आपु—अपना आप,अहँकार। सचो सचु—शुद्ध सच्च। बुझाइआ—समझाया। जिनि—जिस (गुरु) ने।४।

अर्थ : हे प्रभु! अगर तुम्हारी (जीव पर) कृपा हो, तो उसे तेरी कृपा दृष्टि से ईश्वर मिल जाता है।

यह (बेचारा) जीव (जब) बहुत जन्मों में भट्टक चुका (तब तेरी कृपा हुई) तो इसे सतिगुरु ने अपना शब्द (उपदेश) सुनाया।

हे सभी लोगो! ध्यान से सुन लो, सतिगुरु के समान और कोई दाता नहीं है।

जिन मनुष्यों ने अपने अन्दर से अहँकार गँवा दिया, उन्हें उस सतिगुरु से मिलने पर सच्चे प्रभु की प्राप्ति हो गई, जिस सतिगुरु ने शुद्ध सच्चे प्रभु की समझ दी है (भाव, जो मनुष्य अपने अंदर से अहं-भाव खत्म करते हैं, उन्हें उस सतिगुरु के मिलने से सच्चे प्रभु की प्राप्ति हो जाती है, जो सतिगुरु हमेशा स्थिर रहने वाले प्रभु का ज्ञान देता है)।४।

सलोक मः १ ॥

**घड़ीआ सभे गोपीआ पहर कंन्ह गोपाल ॥
गहणे पउणु पाणी बैसंतरु चंदु सूरजु अवतार ॥
सगली धरती मालु धनु वरतणि सरब जंजाल ॥
नानक मुसै गिआन विहूणी खाइ गइआ जमकालु ॥१॥**

शब्दार्थ : घड़ीआ—(जैसे संस्कृत भाषा में 'घट' से 'घड़ा' पंजाबी शब्द बना है, 'कटक' से 'कड़ा' पंजाबी शब्द बना है, उसी तरह संस्कृत भाषा का शब्द 'घटि' का पंजाबी में 'घड़ी' है। 'घड़ी' समय को मापने की एक इकाई है, जो २४ मिन्टों के बराबर होती है)।

गोपी—गायों की रखवाली करने वाली। शब्द 'गोपी' विशेषत: वृंदावन की रहने वाली उन औरतों के लिए प्रयोग होता है जो कृष्ण जी से गोकुल में खेला करती थीं।

कृष्ण जी का जन्म तो मथुरा में हुआ था, जो हिन्दु मतानुसार भारत के सब से अधिक पवित्र सात नगरों में से एक है। वे सात नगर यह हैं—अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काँची, अवन्तिका तथा पुरी।

पहर—सारे दिन का आठवां भाग, जो ३ घण्टे के बराबर होता है। कंन्—संस्कृत भाषा के शब्द 'कृष्ण' का प्राकृत रूप है। गोपाल—कृष्ण का एक नाम है। बैसंतरु—आग। मुसै—लूटी जा रही है। विहूणी—ख़ाली।१।

अर्थ : (सभी) घड़ियाँ (मानो) गोपियाँ हैं; (दिन के सभी) पहर (मानो) काहन् हैं; पवन, पानी व आग (मानो) गहने हैं (जो उन गोपियों ने पहने हुए हैं)। (रास में रासधारी, अवतारों की नकल करके गाते हैं, वैसे ही प्रकृति की रास में) चंद्रमा व सूर्य (मानो) दो अवतार हैं। सारी धरती (रास के लिए) माल धन है, और (जगत के धंधे) रास का सामान हैं। (माया की इस रास में) ज्ञान-हीन दुनिया लुटी जा रही है, और इसे जमकाल निगल रहा है।१।

भावार्थ—यह जगत प्रभु के नृत्य का स्थान है, इसमें पवन, पानी, अग्नि, धरती आदि तत्वों से बने हुए सुन्दर पदार्थ देखकर जीव मोहित हो रहे हैं, और अपनी आयु इसी मौज-मस्ती में ही व्यर्थ गँवा रहे हैं।१।

मः १ ॥
वाइनि चेले नचनि गुर ॥
पैर हलाइनि् फेरनि् सिर ॥
उडि उडि रावा झाटै पाइ ॥
वेखै लोकु हसै घरि जाइ ॥
रोटीआ कारणि पूरहि ताल ॥
आपु पछाड़हि धरती नालि ॥
गावनि गोपीआ गावनि कान् ॥
गावनि सीता राजे राम ॥
निरभउ निरंकारु सचु नामु ॥
जा का कीआ सगल जहानु ॥
सेवक सेवहि करमि चड़ाउ ॥
भिंनी रैणि जिन्ा मनि चाउ ॥
सिखी सिखिआ गुर वीचारि ॥
नदरी करमि लघाए पारि ॥
कोलू चरखा चकी चकु ॥
थल वारोले बहुतु अनंतु ॥
लाटू माधाणीआ अनगाह ॥
पंखी भउदीआ लैनि न साह ॥
सूऐ चाड़ि भवाईअहि जंत ॥
नानक भउदिआ गणत न अंत ॥
बंधन बंधि भवाए सोइ ॥
पइऐ किरति नचै सभु कोइ ॥

नचि नचि हसहि चलहि से रोइ ॥
उडि न जाही सिध न होहि ॥
नचणु कुदणु मन का चाउ ॥
नानक जिन् मनि भउ तिन्हा मनि भाउ ॥२॥

शब्दार्थ : वाइिनि—(साज़) बजाते हैं। रावा—धूल। झाटै—सफेद बालों में। पूरहि ताल—नाचते हैं। पछाड़हि—मारते हैं। गावनि गोपीआ—गोपियाँ (बनकर) गाते हैं। करमि—(प्रभु की) कृपा द्वारा। चड़ाउ—अग्रसर। रैणि—रात, जीवन रूपी रात। सिखी—सीख ली। गुर बीचारि—गुरु की विचार द्वारा। थल वारोले—थलों के चक्रवाक। अनगाह—अनाज निकालने का यंत्र। भउदीआ—पतँगे। बंधन बंधि—बन्धनों में बांधकर। पइऐ किरति—किए हुए कर्मों के संस्कारों के अनुसार। रोइ—रो कर। उडि न जाही—(कहीं ऊँचा) उड़ कर नहीं जा सकते।२।

अर्थ : (रासों में) चेले साज़ बजाते हैं और उन चेलों के गुरु नाचते हैं। (नृत्य के समय वह गुरु) पैरों को हिलाते हैं और सिर घुमाते हैं। (उनके पैरों द्वारा) धूल उड़ उड़ कर उनके सिर में गिरती है, (रास देखने वाले) लोग (उन्हें ऐसा करते) देखकर हँसते हैं। (परन्तु वह रासधारी) रोज़ी-रोटी के लिए नाचते हैं और स्वयं को ज़मीन पर मारते हैं। गोपियों (की नकल बनाकर) गाते हैं, कान् (की नकल बना कर) गाते हैं, सीता राम जी और दूसरे राजाओं (के रूप धार कर) गाते हैं।

जिस प्रभु ने सारी सृष्टि की रचना की है, जो निर्भय है, जिसका नाम सदैव अटल है, उसे (केवल वही) सेवक याद करते हैं जिनके मन में (प्रभु की) कृपा द्वारा आनन्द होता है, जिन के मन में (सुमिरन करने की) चाह है, उन सेवकों की जीवन रूपी रात आसानी से गुज़र जाती है—यह शिक्षा जिन्होंने गुरु द्वारा सीख ली है, कृपालू प्रभु उन्हें संसार-सागर से पार लगा देता है।

(नाचने और खेलने से जीवन का उद्धार नहीं हो सकता, देखें अनगिनत वस्तुएँ हमेशा इसी तरह कर रही हैं) कोहलू, चरखा, चक्की, चाक, चक्रवाक, लाटू, मंथनी, अनाज निकालने के यंत्र, पक्षी, पतँगे आदि सभी घूमते रहते हैं। सूली पर चढ़ाकर कई जन्तु घुमाए जाते हैं। हे नानक! घूमने-फिरने वाले जीवों का अन्त नहीं। (इसी तरह) वह प्रभु जीवों को (माया की) ज़ंजीरों में जकड़ कर घुमाता है, प्रत्येक जीव अपने द्वारा किए कर्मों के संस्कारों के अनुसार नाच रहा है। जो जीव नाच नाच कर हँसते हैं, वे (अन्त को) रो कर (यहाँ से) चले जाते हैं। (वैसे) कोई नाचने कूदने से किसी ऊँची अवस्था पर नहीं पहुँच सकता, और न ही वह सिद्ध बन सकता है।

नाचना कूदना (केवल) मन का शौक है, हे नानक! प्रेम केवल उन्हीं के मन में ही है जिनके मन में प्रभु का भय है।२।

पउड़ी ॥

नाउ तेरा निरंकारु है नाइ लइऐ नरकि न जाईऐ ॥
जीउ पिंडु सभु तिस दा दे खाजै आखि गवाईऐ ॥
जे लोड़हि चंगा आपणा करि पुंनहु नीचु सदाईऐ ॥
जे जरवाणा परहरै जरु वेस करेदी आईऐ ॥
को रहै न भरीऐ पाईऐ ॥५॥

शब्दार्थ : नाइ लइऐ—(अगर तेरा) नाम लें। पिंडु—शरीर। तिस दा—उस (प्रभु) का। खाजै—भोजन। लोड़हि—तुम चाहते हो। करि पुंनहु— भलाई कर के। जरवाणा—बलवान। जरु—बुढ़ापा। परहरै—छोड़ना चाहता है। वेस करेदी—वेश धार कर। आईऐ—(बुढ़ापा) आ रहा है। भरीऐ पाईऐ—जब श्वास पूरे हो जाते हैं।५।

अर्थ : (हे प्रभु!) तेरा नाम निरंकार है, अगर तेरा नाम लें तो नरक में नहीं जाना पड़ता।

यह जान व शरीर सभी कुछ प्रभु का ही है, वही (जीवों को) खाने के लिए (भोजन) देता है, (कितना देता है) यह अन्दाज़ा लगाना भी संभव नहीं।

हे जीव! अगर तुम अपनी भलाई चाहते हो तो अच्छा काम करके भी स्वयं को छोटा कहलवा।

अगर कोई (जीव) बुढ़ेपे को दूर करना चाहे (भाव, बुढ़ापे से बचना चाहे तो यह व्यर्थ प्रयत्न होगा), बुढ़ेपा वेश धार कर आ ही जाता है। जब श्वास (आयु) पूरे हो जाते हैं तो कोई जीव यहाँ नहीं ठहर सकता।५।

सलोक मः १ ॥

मुसलमाना सिफति सरीअति पड़ि पड़ि करहि बीचारु ॥
बंदे से जि पवहि विचि बंदी वेखण कउ दीदारु ॥
हिंदू सालाही सालाहनि दरसनि रूपि अपारु ॥
तीरथि नावहि अरचा पूजा अगरवासु बहकारु ॥
जोगी सुंनि धिआवनि् जेते अलख नामु करतारु ॥
सूखम मूरति नामु निरंजन काइआ का आकारु ॥
सतीआ मनि संतोखु उपजै देणै कै वीचारि ॥
दे दे मंगहि सहसा गुणा सोभ करे संसारु ॥
चोरा जारा तै कूड़िआरा खाराबा वेकार ॥
इकि होदा खाइ चलहि ऐथाऊ तिना भि काई कार ॥
जलि थलि जीआ पुरीआ लोआ आकारा आकार ॥
ओइ जि आखहि सु तूं है जाणहि तिना भि तेरी सार ॥
नानक भगता भुख सालाहणु सचु नामु आधारु ॥
सदा अनंदि रहहि दिनु राती गुणवंतिआ पा छारु ॥१॥

शब्दार्थ : बंदे से—(शरीयत के मुताबक देखते हैं कि) आदमी वही हैं। बंदी—(शरीयत का) बंधन, कैद। दरसन—शास्त्र। सालाहनि—सलाह करते हैं। दरसनि—शास्त्र द्वारा। सालाही—महिमा-योग्य हरी को। रूपि—सुन्दर। तीरथि—तीर्थों पर। अरचा—अर्चना, आदर, पूजा। अगरवासु—चँदन की ख़ुश्बु। बहकारु—महिक। सुंनि—शून्य में, अफुर अवस्था में। सूखम मूरति—प्रभु का वह रूप जो शारीरक इन्द्रियों द्वारा नहीं देखा जा सकता। सती—दानी मनुष्य। देणै कै वीचारि—(किसी को कुछ) देने के ख़्याल से। संतोखु—ख़ुशी, उत्साह। सहसा गुणा—(अपने दिए हुए से) हज़ार गुना (अधिक)। जारा—पर-स्त्री-गामी। तै—और। कूड़िआर—झूठ बोलने वाले। खाराब—बुरे। वेकार—मंद-कर्मी। इकि—कई मनुष्य। होदा—पास पड़ी वस्तु। ऐथाऊ—इस जगत से। खाइ चलहि—भोग कर चल देते हैं। तिना भि—उन्हें भी। काई कार—कोई न कोई काम। जलि—जल में। जीआ—जीव। लोअ— लोक। आकारा आकार—सभी दिख रहे ब्रह्मण्डों के। ओइ—वह सभी जीव। जि—जो कुछ। तूं है—तू ही (हे प्रभु!)। सार—बल, ताकत, आसरा। भुख सालाहणु—महिमा रूपी भूख। आधारु—सहारा, आसरा। पा छारु—पैरों की धूल।१।

अर्थ : मुसलमानों को शरीयत की उपमा (सबसे अच्छी लगती है), वह शरह को पढ़कर (यह) देखते हैं (कि) प्रभु का दर्शन करने के लिये जो मनुष्य (शरह की) कैद में जाते हैं, वही प्रभु के बंदे हैं।

[स्पष्टीकरण : गुरबाणी को ध्यानपूर्वक पढ़ने वाले सज्जन जानते हैं कि जब कभी गुरु जी किसी एक या कई मतों पर विचार करते हैं, तो पहले उन मतों के विचार लिखते हैं, अन्त में अपना मत पेश करते हैं। इस श्लोक की दो-दो पंक्तियों को यदि ध्यानपूर्वक देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम, हिन्दु मत, योग मत, दानी व विकारी मनुष्यों के सम्बन्ध में गुरु जी ख़्याल बता रहे हैं। ठीक यही लगता है कि गुरु जी अपना सभी के बारे एक ही मत अन्त में देते। इसलिए ऊपर की दो पंक्तियों में से पहली को इस्लाम सम्बंधी प्रयोग करके, दूसरी को गुरमत का सिद्धांत

बताना भूल है, क्योंकि यह नियम इस श्लोक में आगे कहीं प्रयोग नहीं हुआ। वास्तविकता यह है कि 'वार' सिर्फ पउड़ियों से बनी हुई है। प्रत्येक पउड़ी के साथ मिलते-जुलते श्लोक गुरु अर्जुन देव जी ने जोड़े हैं। जब पउड़ी के भाव को ध्यानपूर्वक विचारें तो भी :

उतमु एहु बीचारु है जिनि सचे सिउ चितु लाइआ ॥
जग जीवनु दाता पाइआ ॥

वाला सिद्धांत, श्लोक की अंतिम पंक्तियों :

नानक भगता भुख सालाहणु सचु नामु आधारु ॥
सदा अनंदि रहहि दिनु राती गुणवंतिया पा छारु ॥

में से प्राप्त होता है।]

हिन्दु, शास्त्र द्वारा ही, प्रभु जो महिमा के योग व सुन्दर है, का गुण-गायन करते हैं, तीर्थ-स्नान करते हैं, मूर्तियों के आगे भेंट चढ़ाते हैं, पूजा करते हैं और चँदन आदि की सुगन्धि वाले पदार्थ प्रयोग करते हैं।

योगी लोग समाधि लगाकर प्रभु का ध्यान करते हैं और 'अलख' 'अलख' उसका नाम उच्चारण करते हैं। (वह प्रभु उनके मतनुसार) सूक्ष्म स्वरुप वाला है, उसे माया प्रभावित नहीं कर सकती और यह सभी (जगत रूपी) आकार (उसी का) शरीर है।

जो मनुष्य दानी हैं उनके मन में ख़ुशी पैदा होती है, जब (वह किसी ज़रूरतमन्द को) कुछ देने के बारे में सोचते हैं, (परन्तु ज़रूरतमन्दों को) दे देकर (वह मन ही मन प्रभु से) हज़ार गुना अधिक माँगते हैं, और (बाहर) जगत (उनके दान की) महिमा करता है।

(दूसरी ओर, जगत में) असंख्य चोर, पर-स्त्री-गामी, झूठे, बुरे व विकारी भी हैं, जो (विकार कर कर के) पिछली अच्छे कर्मों की कमाई को नष्ट कर (यहाँ से खाली हाथ) चल देते हैं (परन्तु यह प्रभु की इच्छा है), उन्हें भी (उसी ने ही कोई ऐसा दायित्व सौंप रखा है।

जल में रहने वाले, धरती पर बसने वाले, बेअन्त पुरियों, लोकों और ब्रह्मण्डों के जीव—वह सभी जो कुछ कहते हैं, वह सब कुछ, (हे प्रभु!) आप जानते हो, उन्हें भी तेरा ही सहारा है।

हे नानक! भक्तों को केवल प्रभु के गुण-गान की अभिलाषा रहती है, हरि का हमेशा अटल रहने वाला नाम ही उनका सहारा है, वे दिन रात आनंद में रहते हैं और (स्वयं को) गुणवानों के पैरों की धूल समझते हैं।१।

म: १ ॥

मिटी मुसलमान की पेड़ै पई कुमि्आर ॥
घड़ि भांडे इटा कीआ जलदी करे पुकार ॥
जलि जलि रोवै बपुड़ी झड़ि झड़ि पवहि अंगिआर ॥
नानक जिनि करतै कारणु कीआ सो जाणै करतारु ॥२॥

शब्दार्थ : कीआ—बनाई। करे पुकार—(वह, मिट्टी मानो) पुकार करती है। जलि जलि—जल जल कर। पवहि—(नीचे) गिरते हैं। जिनि करतै—जिस ईश्वर ने, जिस प्रभु ने। कारणु—जगत की माया।२।

अर्थ : (मुसलमान सोचते हैं कि मर्णोपरांत जिनका शरीर जलाया जाता है, वह नरक की आग में जलते हैं, परन्तु) उस जगह की मिट्टी भी, जहाँ मुसलमान मुर्दे दफन करते हैं (कई बार) कुम्हार ले जाते हैं (भाव यह है कि वह मिट्टी चिकनी होने के कारण, कुम्हार उस मिट्टी से) बर्तन और ईंटें बनाता है (और आवे में पकाता है, वह मिट्टी, मानो) जलती हुई पुकार करती है, जल जल कर बेचारी रोती है और उस में से अंगारे निकल कर भूमि पर गिरते हैं, (परन्तु मुक्ति या नरक का, मुर्दा-शरीर जलाने व दफन करने से कोई सम्बंध नहीं), हे नानक! जिस प्रभु ने जगत की माया रची है, वही (असल भेद को) जानता है।२।

स्पष्टीकरण : जब जीवात्मा अपना शरीर छोड़ जाए, तो उस शरीर को दबाने या जलाने आदि क्रिया का कोई प्रभाव जीवात्मा पर नही पड़

सकता। जब तक जीवात्मा इस शरीर में रहता है, तब किए हुए कर्मों के अनुसार ही उसके भाग्य का फैसला होता है।

वह फैसला क्या है ? प्रत्येक जीव के बारे में इस प्रश्न के उत्तर को प्रभु ही जानता है, जिसने जगत-मर्यादा बनाई है, भाव, प्रभु ख़ुद ही जानता है कि जीव अपनी कमाई अनुसार उस की आज्ञा से कहाँ जा पहुँचा है)। इसलिए यह झगड़ा व्यर्थ है। एक ही बात जो प्रत्येक जीव के लिए गुणकारी है, वह यह है :

उतमु एहु बीचारु है जिनि सचे सिउ चितु लाइआ ॥
जग जीवनु दाता पाइआ ॥

गुरु अमरदास जी भी इसी ख़्याल को इस तरह फरमाते हैं :

इकि दझहि इकि दबीअहि इकना कुते खाहि ॥
इकि पाणी विचउ सटीअहि इकि भी फिरि हसणि पाहि ॥
नानक एव न जापई किथै जाइ समाहि ॥२॥१६॥

(सोरठि की वार, म: ३)

पउड़ी ॥

बिनु सतिगुर किनै न पाइओ बिनु सतिगुर किनै न पाइआ ॥
सतिगुर विचि आपु रखिओनु करि परगटु आखि सुणाइआ ॥
सतिगुर मिलिऐ सदा मुकतु है जिनि विचहु मोहु चुकाइआ ॥
उतमु एहु बीचारु है जिनि सचे सिउ चितु लाइआ ॥
जग जीवनु दाता पाइआ ॥६॥

नोट : 'पाइओ' और 'पाइआ' के अर्थ यह करने कि 'पिछले समय में पाइया' और 'अब पाइया' व्याकरण अनुसार अशुद्ध हैं। पाइओ और पाइया दोनों ही भूत काल के रूप हैं। दोनों का एक ही अर्थ है। (देखें *गुरबाणी व्याकरण*)। दो बार वही बात कहने से उस बात पर ज़ोर डाला जाना अभीष्ट होता है। यहाँ कहने का अभिप्राय यह है कि गुरु के बिना

किसी को ईश्वर की प्राप्ति नहीं हुई।

शब्दार्थ : किनै—किसी ने ही। पाइओ—प्राप्त किया। पाइआ—पाया, प्राप्त किया। रखिओनु—उसने रख दिया है। सतिगुर मिलिऐ—अगर (ऐसा) गुरु मिल जाए। जिनि—जिस (गुरू) ने। चुकाइआ—दूर कर दिया है। जिनि—जिस (मनुष्य) ने। जग जीवनु—जगत का जीवन (प्रभु)।६।

अर्थ : किसी मनुष्य को (प्रभु) सच्चे गुरु के बिना (सतिगुरु की शरण में जाए बिना) नहीं प्राप्त हुआ, (यह सच जानों कि) किसी मनुष्य को गुरु की शरण के बिना (प्रभु) नहीं मिला। (क्योंकि प्रभु ने) स्वयं को सच्चे गुरु में ही रखा है। (भाव यह है कि प्रभु सच्चे गुरु में साक्षात् हुआ है), (हमने यह भेद सबको) साफ साफ कह दिया है। अगर (ऐसा) गुरु, जिसने अपने अंदर से माया का मोह दूर कर दिया है, मनुष्य को मिल जाए तो मनुष्य मुक्त (माया के बंधनों से आज़ाद) हो जाता है।

(और सभी चतुराईयों से) यह बात भली है कि जिस मनुष्य ने अपने गुरु से मन जोड़ा है, उसे प्रभु प्राप्त हो गया है।६।

सलोक मः १ ॥

हउ विचि आइआ हउ विचि गइआ ॥
हउ विचि जंमिआ हउ विचि मुआ ॥
हउ विचि दिता हउ विचि लइआ ॥
हउ विचि खटिआ हउ विचि गइआ ॥
हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु ॥
हउ विचि पाप पुंन वीचारु ॥
हउ विचि नरकि सुरगि अवतारु ॥
हउ विचि हसै हउ विचि रोवै ॥
हउ विचि भरीऐ हउ विचि धोवै ॥

हउ विचि जाती जिनसी खोवै ॥
हउ विचि मूरखु हउ विचि सिआणा ॥
मोख मुकति की सार न जाणा ॥
हउ विचि माइआ हउ विचि छाइआ ॥
हउमै करि करि जंत उपाइआ ॥
हउमै बूझै ता दरु सूझै ॥
गिआन विहूणा कथि कथि लूझै ॥
नानक हुकमी लिखीऐ लेखु ॥
जेहा वेखहि तेहा वेखु ॥१॥

शब्दार्थ : हउ—मैं, प्रभु से भिन्न अस्तित्व का अहसास। गइआ—गँवाया। नरकि सुरगि अवतारु—नरक या स्वर्ग में आना। भरीऐ—(पापों की मैल से) मलिन हो जाता है। जाती जिनसी—जाति-पाति। सार—समझ। छाइआ—(माया की) परछाई। सूझै—समझ आ जाती है। कथि कथि—कह कह कर। लूझै—लिप्त, उलझनों में परेशान होता है। हुक्मी—(प्रभु की) आज्ञा के अनुसार। लेखु—(यह अहँकार वाला) लेख, प्रभु से भिन्न समझने वाला संस्कार। वेखहि—(जीव) देखते हैं, (औरों की ओर) देखते हैं। वेखु—दृश्य, स्वरूप, शक्ल, भिन्न अस्तित्व, अहं।१।

अर्थ : (जब तक जीव) अहं में (है, भाव प्रभु से अपने को भिन्न मानता है, तब तक कभी) पैदा होता है कभी मरता है। जीव इस भिन्न अस्तित्व के घेरे में रहकर कभी (किसी ज़रूरतमंद को) देता है, कभी (अपनी किसी ज़रूरत को पूरा करने हेतु किसी से कुछ) लेता है। इस 'मैं मैं' के ख़्याल में कभी लाभ कमाता है कभी हानि उठाता है।

जब तक जीव मेरे-तेरे के घेरे में है, (लोगों की नज़रों में) वह कभी सच्चा है कभी झूठा है। जब तक अपने रचयता से पृथक अस्तित्व के भ्रम में है तब तक अपने किए पापों व पुण्यों की गिनती गिनता है,

(भाव, यह सोचता है कि 'मैंने' यह भले काम किए हैं, 'मैंने' यह बुरे कर्म किए हैं) और भिन्नता के अहसास में होने के कारण) कभी नरक में जाता है कभी स्वर्ग में जाता है।

(प्रभु से भिन्न होने के अहसास के कारण) कभी (जीव) हँसता है कभी रोता है (भाव, कभी स्वंय को सुखी अनुभव करता है कभी दुखी)। (इसी कारण) कभी उसका मन पापों की मैल में मलिन हो जाता है, कभी वह (अपने परिश्रम से) उस मैल को धो डालता है। (इसी भिन्नता के अहसास के कारण ही जीव) कभी जाति-पाति के ख़्याल में (कि मैं ऊँची जाति का हूँ, स्वयं को) गँवा लेता है। (जब तक जीव इस भिन्न अस्तित्व के घेरे में है, यह (लोगों की नज़र में) कभी मूर्ख और कभी विद्वान (समझा जाता) है, (परन्तु जब तक इस घेरे से बाहर नहीं आता, तब तक) मुक्ति की समझ इसे नहीं आ सकती।

(जब तक प्रभु से बिछोड़े की हालत में है, तब तक) जीव 'माया माया' (पुकारता फिरता है) तब तक इस पर माया का प्रभाव रहता है, प्रभु से बिछुड़ा रहकर जीव बार बार पैदा होता है।

जब प्रभु से बिछुड़ने की हालत को समझ लेता है (भाव, जब यह समझ लेता है कि मैं अपने बिछोड़े वाले घेरे में कैद हूँ, परमात्मा से अलग हूँ) तभी इसे प्रभु का द्वार मिल जाता है, (नहीं तो) जब तक इस ज्ञान से अछूता है, तब तक (केवल ज्ञान की बातें) कह कहकर (अपना आप अन्दर से) जलाता है।

हे नानक! जीव जैसे जैसे देखते हैं, वैसा उनका स्वरूप बन जाता है (भाव, जिस नियति से दूसरे मनुष्यों से मिलते हैं, उसी तरह के संस्कार अन्दर एकत्र होकर, वैसा ही उनका अपना मानसिक स्वरूप बन जाता है), (परन्तु) यह लेख (भी) प्रभु की आज्ञा में ही लिखा जाता है, (भाव प्रत्येक जीव का भिन्न अस्तित्व प्रभु के आदेशनुसार ही है। प्रभु का एक ऐसा नियम बना हुआ है कि प्रत्येक मनुष्य के अपने कर्मों के संस्कारों

के अनुसार ही उसके चारों ओर इन्हीं संस्कारों का जाल तन जाता है। इसी ईश्वरीय नियम द्वारा मनुष्य की अपनी एक भिन्न स्वार्थी हस्ती बन जाती है) ।१।

म : २ ॥

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि ॥
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि ॥
हउमै किथहु ऊपजै कितु संजमि इह जाइ ॥
हउमै एहो हुकमु है पइऐ किरति फिराहि ॥
हउमै दीरघु रोगु है दारू भी इसु माहि ॥
किरपा करे जि आपणी ता गुर का सबदु कमाहि ॥
नानकु कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि ॥२॥

शब्दार्थ : जाति—स्वभाव, गुण। हउमै करम—वह काम जिन से 'अह' बना रहे। एई—यही। कितु संजमि—किस ढंग से, किस युक्ति द्वारा। पइऐ किरति फिराहि—कर्मों के संस्कारों के मुताबिक जीव फिर फिर से उन्हीं कामों को करने के लिए भागते हैं। दीरघु—लम्बा, काफी देर तक रहने वाला। [बुरी संगत में जब एक दो बार शराब पीने से जब उसको आदत हो जाती है तो वह आदत ही उसे शराबख़ाने की ओर ले जाती है। इस तरह यह आदत बढ़ती जाती है, यह एक दीर्घ रोग बन जाता है। इसी तरह जो भी आदत एक बार बनती है, वह अपने आप इस नियमानुसार लम्बी होती जाती है।]

दारू भी—ईलाज भी है (भाव, उपचार योग्य है)। इस माहि—इस अहँकार में, इस अहँकार का।

दारू भी इसु माहि—*नोट*—शब्द 'भी' जिस शब्द के साथ प्रयोग होता है, उच्चारण में और अर्थ में उस पर बल देना होता है। इस पंक्ति में शब्द 'दारू' को बाकी शब्दों से अधिक बल देकर पढ़ना है। इस तरह

पाठ करने से इसका अर्थ भी खुल जाता है। कई सज्जन पाठ करते समय 'इसु' शब्द पर बल देते हैं, जिस कारण इस पंक्ति का अर्थ समझ नहीं आता। इसीलिए कई सज्जन पूछते रहते हैं कि 'इस अहँकार में ही दारू किस तरह है'।

नानकु कहै—नानक कहता है। इतु संजमि—इस युक्ति द्वारा।२।

अर्थ : अहँकार का गुण ही यही है (भाव, यदि प्रभु से भिन्न पहचान बनी रहे तो इसका नतीजा यही होता है कि जीव) वही काम करते हैं, जिन से उनकी भिन्न पहचान बनी रहे। इस भिन्न अस्तित्व के बँधन भी यही हैं (इन में घिरे जीव फिर फिर से योनियों में भटकते हैं)।

(स्वभाविक ही मन में प्रश्न पैदा होता है कि जीव का) यह भिन्न अस्तित्व वाला भ्रम कहाँ से पैदा होता है और किस युक्ति से दूर होता है ?

(इस बात का उत्तर यह है कि) यह अलग अस्तित्व (बनाने वाले प्रभु का) आदेश है और जीव पूर्व किए हुए कर्मों के संस्कारों के अनुसार फिर पहले ही किए हुए कामों की ओर भागते हैं (भाव, व्यक्तिव को कायम रखने वाले काम करना चाहते हैं)।

यह अहँकार एक लम्बा रोग है, परन्तु यह उपचार योग्य है। अगर प्रभु अपनी दया करे तो जीव गुरु का शब्द कमाते हैं (गुरु के उपदेश पर चलते हैं)। नानक कहता है, हे लोगो, इस प्रकार (अहँकार रूपी दीर्घ रोग द्वारा पैदा हुए) दुख दूर हो जाते हैं।२।

पउड़ी ॥

सेव कीती संतोखीईं जिन्ही सचो सचु धिआइआ ॥
ओन्ही मंदै पैरु न रखिओ करि सुक्रितु धरमु कमाइआ ॥
ओन्ही दुनीआ तोड़े बंधना अंनु पाणी थोड़ा खाइआ ॥
तूं बखसीसी अगला नित देवहि चड़हि सवाइआ ॥
वडिआई वडा पाइआ ॥७॥

शब्दार्थ : संतोखीईं—संतुष्ट मनुष्यों ने। सचो सचु—शुद्ध सच्चा (प्रभु)। मंदै—बुरी जगह पर। सुक्रितु—भला काम। धरमु कमाइआ—धर्म अनुसार अपना जीवन बनाया है। बखसीसी—कृपा करने वाला, कृपालु। अगला—बड़ा, अधिक। देवहि—(हे हरी!) तुम जीवों को दातें देते हो। चड़हि—तुम चढ़ते हो, तुम बढ़ते हो। सवाइआ—बहुत, अधिक। वडिआई—(इस तरह) महिमा करके।७।

अर्थ : जो संतुष्ट मुनष्य हमेशा एक अविनाशी प्रभु को याद करते हैं, (प्रभु की) सेवा वही करते हैं। वह कभी बुरे काम के नज़दीक नहीं जाते, भला काम करते हैं और धर्मानुसार अपना जीवन व्यतीत करते हैं। दुनिया के धन्धों में फँसाने वाली माया की मोह-रूपी ज़ंजीरें उन्होंने तोड़ दी हैं, वह कम खाते हैं और कम पीते हैं (भाव, वह स्वाद के लिए नहीं बल्कि शरीर की आवश्यकतानुसार खाते-पीते हैं)। "हे प्रभु! तुम बहुत कृपालु हो, हमेशा जीवों को दातें देते हो"—इस तरह प्रभु की महिमा करके (वह संतुष्ट) मनुष्य प्रभु को प्राप्त कर लेते हैं।७।

सलोक मः १ ॥

पुरखां बिरखां तीरथां तटां मेघां खेतांह ॥
दीपां लोआं मंडलां खंडां वरभंडांह ॥
अंडज जेरज उतभुजां खाणी सेतजांह ॥
सो मिति जाणै नानका सरां मेरां जंताह ॥
नानक जंत उपाइ कै संम्हाले सभनाह ॥
जिनि करतै करणा कीआ चिंता भि करणी ताह ॥
सो करता चिंता करे जिनि उपाइआ जगु ॥
तिसु जोहारी सुअसति तिसु तिसु दीबाणु अभगु ॥
नानक सचे नाम बिनु किआ टिका किआ तगु ॥१॥

(***नोट :*** अर्थ करते समय चौथी पंक्ति का शब्द 'मिति', शब्द 'पुरखां'

से लेकर 'जंताह' तक प्रत्येक 'संज्ञा' (Noun) के साथ प्रयोग किया जाएगा।)

शब्दार्थ : मिति—अंदाज़ा, मिनती। तटां—नदियों के किनारों का। मेघां—बादलों का। दीपां—वह धरती जिसके दोनों ओर पानी हो। लोअ—लोक (आम तौर पर तीन लोक माने गए हैं—स्वर्ग, धरती और पाताल। पर इनकी गिनती चौदह (१४) भी बताई जाती है—सात लोक धरती के ऊपर और सात लोक धरती के नीचे)। मंडल—चक्र, चन्द्रमा, सूर्य, धरती आदि ग्रहों का एक जुट या चक्र। खंड—टुकड़ा, धरती का एक भाग जैसे 'भारत खंड'। वरभंड—ब्रह्मण्ड, ब्रह्म का अण्डा, सृष्टि। अंडज—अण्डों से पैदा होने वाले जीव, पंछी। जेरज—जेर से पैदा हुए जीव, जैसे पशु व मनुष्य। उतभुज—धरती में से उगने वाली वनस्पति। खाणी—उत्पत्ति की जगह। (सृष्टि की उत्पत्ति के चार तरीके माने गए हैं—अण्डज, जेरज, उतभुज और सेतज)। सेतज—पसीने से पैदा हुए जीव, जुएं आदि। सो—वह प्रभु। सरां—सरोवरों की। मेरां—मेरु (जैसे) पर्वतों की। जंताह—जीव-जंतुओं की। संम्ह़ाले—देखभाल करता है। जिनि करतै—जिस करतार ने। करणा—सृष्टि। ताह—उस करतार ने। जोहारी—मैं प्रणाम करता हूँ। सुअसति—जय हो। सुअसति तिसु—उस प्रभु की ज़य हो। तिसु दीबाणु—उस प्रभु की टेक। अभगु—नाश न होने वाला। किआ टिका किआ तगु—तिलक व जनेऊ क्या हैं ? भाव, कि यह मात्र बाहरी चिन्ह व्यर्थ हैं।१।

अर्थ : मनुष्य, वृक्ष, तीर्थ, नदियाँ, बादल, खेत, द्वीप, लोक, मण्डल, खँड, ब्रह्मण्ड, सर, मेरु आदि पर्वत, चार खानों (अण्डज, जेरज, उतभुज, सेतज) के जीव-जन्तु, इन सभी की गिनती का अंदाज़ा वही प्रभु जानता है (जिसने यह सब पैदा किए हैं)।

हे नानक! सभी जीव-जन्तु पैदा करके प्रभु उन सभी का पोषण भी करता है। जिस करतार ने इस सृष्टि की उत्पत्ति की है, इसकी देखरेख की चिन्ता भी उसी को है।

जिस करतार ने जगत पैदा किया है, वही इसका ध्यान रखता है। मैं उस पर कुर्बान हूँ, उसी की जय बोलता हूँ, उसी का आश्रय (जीवों के लिए) सदैव अटल है। हे नानक! उस हरि के सच्चे नाम-स्मरण के बिना तिलक व जनेऊ आदि धार्मिक वेष किसी काम के नहीं।१।

म: १ ॥

लख नेकीआ चंगिआईआ लख पुंना परवाणु ॥
लख तप उपरि तीरथां सहज जोग बेबाण ॥
लख सूरतण संगराम रण महि छुटहि पराण ॥
लख सुरती लख गिआन धिआन पड़ीअहि पाठ पुराण ॥
जिनि करतै करणा कीआ लिखिआ आवण जाणु ॥
नानक मती मिथिआ करमु सचा नीसाणु ॥२॥

शब्दार्थ : नेकीआ—नेकी के काम। चंगिआईआ—भलाई के काम। पुंना—पुन्यकर्म। परवाणु—(जो लोगों की नज़र में) अच्छे (हों)। सहज—शांतिपूर्वक अपने मूल से एक रूप होकर, स्वाभाविक। जोग—योग मत अनुसार चित्त के विचारों को रोकने का नाम 'जोग' है। बेबाण—जंगलों में। सूरतण—बहादुरी। संगराम—रणभूमियों में। रण महि—जंग में। छुटहि पराण—प्राण निकलें, अंतिम समय आवे। सुरती—ध्यान जोड़ना। पड़ीअहि—पढ़े जाएं। पाठ पुराण—पुराणों के पाठ। लिखिआ—लिख दिया है। आवण जाणु—जीवों का पैदा होना व मरना। मती—मत (चतुराईयां)। मिथिआ—व्यर्थ। करमु—कृपा, दया। नीसाणु—राहदारी, निशान। सचा नीसाणु—सच्चा परवाना।२।

अर्थ : लाखों नेकी के, भलाई के व धर्म के काम किए जाएं जो लोगों की नज़र में बढ़िया हों, तीर्थों पर जाकर लाखों तप किए जाएं, जंगलों में जाकर योग-साधनाएं की जाएं, रण-क्षेत्र में वीरोचित कारनामे दिखाए जाएं, युद्ध में शहीद हुआ जाए, लाखों (तरीकों से) सुरति टिकाई जाए,

ज्ञान-चर्चा की जाए और मन को एकाग्र करने के प्रयत्न किए जाएं, अनेकों बार पुराण आदि धर्म-पुस्तकों के पाठ किए जाएं, (परन्तु) हे नानक! यह सभी चतुराईयां व्यर्थ हैं। (प्रभु के घर में कबूल होने के लिए) उस प्रभु की कृपा ही सच्ची राहदारी है, जिसने यह सारी सृष्टि रची है और जिसने जीवों का पैदा होना व मरना नियत किया है (इसलिए उसकी दया का पात्र बनने के लिए उसका नाम याद करना ही उत्तम मत है)।२।

पउड़ी ॥

सचा साहिबु एकु तूं जिनि सचो सचु वरताइआ ॥
जिसु तूं देहि तिसु मिलै सचु ता तिन्ही सचु कमाइआ ॥
सतिगुरि मिलिऐ सचु पाइआ जिन कै हिरदै सचु वसाइआ ॥
मूरख सचु न जाणनी मनमुखी जनमु गवाइआ ॥
विचि दुनीआ काहे आइआ ॥८॥

शब्दार्थ : एकु तूं—केवल तुम। सचो सचु—पूर्ण स्थिरता, पूर्ण खिलाउ। वरताइआ—बांट दिया, पैदा कर दिया। तूं देहि—तुम देते हो। तिसु मिलै सचु—उस मनुष्य को पूर्ण स्थिरता मिल जाती है। ता—तो, उस दाते की मेहर से। तिन्ही—उन (भाग्यशाली मनुष्यों) ने। सचु कमाइआ—सच्चे रास्ते पर चले। जिन् कै—जिन मनुष्यों के। वसाइआ—गुरु ने टिका दिया है। मनमुखी—मन के पीछे लगने वालों ने। काहे आइआ—क्यों आए, आने का लाभ नहीं हुआ।८।

अर्थ : हे प्रभु! केवल तुम ही पूर्ण रूप से स्थिर रहने वाले मालिक हो, और तुमने स्वयं ही अपनी स्थिरता के गुण को (जगत में) बांट दिया है। (परन्तु) यह गुण (केवल) उसी जीव को प्राप्त होता है, जिसे तू स्वयं देता है, तेरी दया से वह मनुष्य सच्चाई के रास्ते पर चलते हैं। जिन्हें सतिगुरु मिल जाता है उन्हें यह पूर्ण स्थिरता के गुण की दात मिलती है, सतिगुरु उनके हृदय में सच्चाई रख देता है।

मूर्खों को इस सच्चाई की समझ नहीं आती, वह मनमुख (इस को प्राप्त करने से वंचित रहकर) अपना जन्म व्यर्थ गँवाते हैं, जगत में जन्म लेने का उनको कोई लाभ नहीं होता।८।

सलोकु मः १ ॥

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ ॥
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात ॥
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास ॥
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास ॥
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख ॥१॥

शब्दार्थ : लदीअहि—भरी जाएं (पढ़ी हुई पुस्तकों की गाड़ियां)। भरीअहि—भर लिए जाएं। साथ—ढेर। भरीअहि साथ—ढेरों के ढेर लगाए जा सकते हों। बेड़ी पाईऐ—(पढ़ी हुई पुस्तकों से) एक बेड़ी भरी जा सके। गडीअहि—गाड़े जा सकें, भरे जा सकें। खात—गढ़े। जेते बरस बरस—जितने वर्ष हैं, कई वर्ष। पड़ीअहि जेते बरस बरस—कई सालों के साल पढ़कर व्यतीत किए जाएं। मास—महीने। जेते मास—जितने भी महीने हैं। पड़ीऐ—पढ़ के बिताई जाये। जेती आरजा—जितनी उमर।

[***नोट :*** 'पड़ीऐ' व्याकरण अनुसार वर्तमान काल, कर्म वाच्य (Passive Voice) अन्य पुरुष, एक-वचन है। 'पड़ीअहि' इसी का 'बहु-वचन' है। 'पड़हि' वर्तमान काल, कर्त्ता वाच्य (Active Voice) है। अधिक जानकारी के लिए देखें, *गुरबाणी व्याकरण*]

सास—श्वास, साँस। लेखै—लेखे में, सही। इक गल—एक प्रभु की बात, एक का गुण-गान। होरु—और प्रयत्न। झखणा झाख—बेकार बातें।१।

अर्थ : अगर इतनी पुस्तकें पढ़ लें, जिन से कई गाड़ियां भरी जा सकती हों, जिन के ढेरों के ढेर लगाए जा सकें; अगर इतनी पुस्तकें पढ़ ली जाएं

कि उनसे एक बेड़ी भरी जा सके, कई गढ़े भरे जा सकते हों; अगर पढ़ पढ़कर कई वर्ष बिता दिए जाएं; अगर पढ़ पढ़कर (वर्ष के) सभी महीने गुज़ार दिए जाएं; अगर पढ़ पढ़कर सारी आयु व श्वास भी लगा दें (तो भी प्रभु की दरगाह में इस सब में से कुछ भी कबूल नहीं होता)।

हे नानक! प्रभु के दरबार में केवल प्रभु की की हुई महिमा ही कबूल होती है, (प्रभु की महिमा के बिना) कोई और प्रयत्न करना, अपने अहंकार में भटकते फिरना ही है।१।

म: १ ॥

लिखि लिखि पड़िआ तेता कड़िआ ॥
बहु तीरथ भविआ तेतो लविआ ॥
बहु भेख कीआ देही दुखु दीआ ॥
सहु वे जीआ अपणा कीआ ॥
अंनु न खाइआ सादु गवाइआ ॥
बहु दुखु पाइआ दूजा भाइआ ॥
बसत्र न पहिरै अहिनिसि कहरै ॥
मोनि विगूता किउ जागै गुर बिनु सूता ॥
पग उपेताणा अपणा कीआ कमाणा ॥
अलु मलु खाई सिरि छाई पाई ॥
मूरखि अंधै पति गवाई ॥
विणु नावै किछु थाइ न पाई ॥
रहै बेबाणी मड़ी मसाणी ॥
अंधु न जाणै फिरि पछुताणी ॥
सतिगुरु भेटे सो सुखु पाए ॥
हरि का नामु मंनि वसाए ॥

नानक नदरि करे सो पाए ॥
आस अंदेसे ते निहकेवलु हउमै सबदि जलाए ॥२॥

शब्दार्थ : लिखि लिखि पड़िआ—(जितना ही मनुष्य विद्या) पढ़ता लिखता है। तेता—उतना ही। कड़िआ—अहंकारी हो जाता है। तेतो—उतना ही अधिक। लविआ—(कऊए की तरह) जगह जगह कहता है कि मैं तीर्थों की यात्रा कर आया हूँ। देही—शरीर। सहु—सहार। वे जीआ—हे जीव! सादु— स्वाद। सादु गवाइआ—स्वाद गँवा लेता है, कोई मज़ा नहीं रहता। दूजा—(नाम के बिना) कोई दूसरा ढोंग। भाइआ—अच्छा लगा। अहि—दिन। निसि—रात। कहरै—दुख सहारता है। मोनि—मोन-धारी, जो चुप बैठा रहे। विगूता—कुमार्ग पर पड़ा हुआ है। पग—पैर। उपेताणा—जूते के बिना। अलु मलु—गन्दी वस्तुएं। सिरि—सिर पर। छाई—राख़। मूरखि—मूर्ख ने। पति—इज़्ज़त। थाइ न पाई—कबूल नहीं होता। बेबाणी—जंगलों में। अंधु—अन्धा, मूर्ख। सतिगुरु भेटे—(जिसे) गुरु मिल जाए। मंनि—मन में। अंदेसे—चिन्ता। ते—से। निहकेवलु—निरलेप। सबदि—शब्द द्वारा।२।

अर्थ : जितना मनुष्य (विद्या) लिखनी पढ़नी जानता है, उतना ही उसे अपनी विद्वता का अहँकार है (सो यह ज़रूरी नहीं कि प्रभु को पाने के लिए विद्या की ज़रूरत है), जितना कोई अधिक तीर्थों की यात्रा करता है उतना ही वह जगह जगह बताता है (कि मैं फलां तीर्थ पर स्नान कर आया हूँ। इसलिए तीर्थ यात्रा भी अहँकार का कारन ही बनती है)।

किसी ने (लोगों को भ्रमित करने के लिए धर्म के) कई चिन्ह धारण किए हुए हैं, और कोई अपने शरीर को कष्ट दे रहा है, (उसके बारे में भी यही कहना उचित होगा कि) हे भाई! अपने किए का दुख सहार (भाव, यह वेश बनाने से शरीर को दुख देना भी प्रभु के द्वार पर स्वीकार नहीं हैं)।

(और देखें, जिसने) अन्न त्याग दिया है (स्मरण त्याग कर) उसे

यह काम ही अच्छा लगा हुआ है। उसने भी अपनी ज़िन्दगी दुखदाई बनाई हुई है और दुख सह रहा है। कपड़े नहीं पहनता और दिन रात कठिनाई झेलता है। (एकांत में) चुप होकर सच्चाई से दूर है, भला बताएं (माया की नींद में) सोया मनुष्य गुरु के बिना कैसे जागेगा ?

(एक) पैरों से नग्न घूमता है और अपनी इस भूल का दुख सह रहा है। (अच्छा शुद्ध भोजन त्याग कर) गंदा (जूठन) खाता है और सिर में राख़ डाल रखी है, अज्ञानी मूर्ख ने (इस तरह) अपनी इज़्ज़त गँवा ली है, प्रभु के नाम के बिना और सब कुछ व्यर्थ है।

अन्धा (मूर्ख) जंगलों में, मरघटों में, शमशान में जाकर रहता है, (प्रभु वाला रास्ता) नहीं समझता और समय गुज़र जाने पर पछताता है।

जिस मनुष्य को गुरु मिल गया है, (सच्चा) सुख वही भोगता है, वह (भाग्यशाली) प्रभु का नाम अपने हृदय में (टिका लेता) है। (परन्तु) हे नानक! गुरु भी उसे ही मिलता है जिस पर प्रभु स्वयं दया की नज़र करता है। वह सांसारिक आशाओं और चिन्ताओं से निर्लेप होकर गुरु के शब्द द्वारा अपने अहँकार को जला देता है।२।

पउड़ी ॥

भगत तेरै मनि भावदे दरि सोहनि कीरति गावदे ॥
नानक करमा बाहरे दरि ढोअ न लहन्ी धावदे ॥
इकि मूलु न बुझनि् आपणा अणहोदा आपु गणाइदे ॥
हउ ढाढीका नीच जाति होरि उतम जाति सदाइदे ॥
तिन् मंगा जि तुझै धिआइदे ॥९॥

शब्दार्थ : तेरै मनि—तेरे मन में। दरि—(तेरे) द्वार पर। कीरति—शोभा। करमा बाहरे—भाग्य-हीन। ढोअ—आसरा। धावदे—भटकते हैं। इकि—कई जीव। मूलु—प्रभु। अणहोदा—(घर में) पदार्थ होने के बिना ही। आपु—अपने आप को। गणाइदे—बड़ा जताते हैं। हउ—मैं।

ढाढी—बडाई करने वाला मामूली ढाढी। ढाढीका—छोटा सा ढाढी। नीच जाति—छोटी जाति वाला। होरि—और लोग। उतम जाति—ऊँची जाति वाले।९।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुझे अपने मन में भक्त प्यारे लगते हैं, जो तेरा गुणगान कर रहे हैं और तेरे द्वार पर सुशोभित हो रहे हैं। हे नानक! भाग्य-हीन मनुष्य भटकते फिरते हैं, उन्हें प्रभु के द्वार पर जगह नहीं मिल पाती, (क्योंकि) यह (बेचारे) अपने मूल को नहीं पहचानते, (प्रभु-गुणों की पूँजी अपने अन्दर) होने के बिना ही स्वयं को बड़ा ज़ाहिर करते हैं।

(हे प्रभु!) मैं छोटी जाति का (तेरे द्वार का) एक मामूली सा ढाढी हूँ, और लोग (ख़ुद को) उत्तम जाति का कहलाते हैं। जो तेरा भजन करते हैं, मैं उनसे (तेरा 'नाम') माँगता हूँ।९।

सलोकु मः १॥

कूड़ु राजा कूड़ु परजा कूड़ु सभु संसारु ॥
कूड़ु मंडप कूड़ु माड़ी कूड़ु बैसणहारु ॥
कूड़ु सोइना कूड़ु रुपा कूड़ु पैन्णहारु ॥
कूड़ु काइआ कूड़ु कपड़ु कूड़ु रूपु अपारु ॥
कूड़ु मीआ कूड़ु बीबी खपि होए खारु ॥
कूड़ि कूड़ै नेहु लगा विसरिआ करतारु ॥
किसु नालि कीचै दोसती सभु जगु चलणहारु ॥
कूड़ु मिठा कूड़ु माखिउ कूड़ु डोबे पूरु ॥
नानकु वखाणै बेनती तुधु बाझु कूड़ो कूड़ु ॥१॥

शब्दार्थ : कूड़ु—छल, भ्रम। [***नोट :*** शब्द 'कूड़ु' विशेषण नहीं है, 'नांव' है और पुल्लिग है। यही कारण है कि 'माड़ी', 'काइआ', 'बीबी' आदि स्त्री-लिंग शब्दों के साथ भी 'कूड़ु' पुल्लिग एक-वचन ही है।]

मंडप—शामियाने। माड़ी—महल। बैसणहारु—(महल का) वासी। रुपा—चाँदी। सोइना—सोना। काइआ—शरीर। अपारु—बेअंत, अधिक। मीआ—पति। बीबी—बीवी, औरत, स्त्री। खपि—सलंग्न होकर। खारु—ज़लील, बे-इज़्ज़त। कूड़ि—भ्रम में। कूड़ै—भ्रमित्त हुए जीव का। कीचै—की जाए। मिठा—मन-भावन। पूरु—सभी जीव। नानकु वखाणै—नानक कहता है। कूड़ो कूड़ु—झूठ ही झूठ, भ्रम ही भ्रम।

[*नोट :* यहाँ तीन शब्द 'कूड़ु', 'कूड़ि' और 'कूड़ै' समझने ज़रूरी हैं।

कूड़ु—'नांव' (Noun) है, कर्ता-कारक, एक-वचन।

'कूड़ि' शब्द 'कूड़ा' से अधिकरण-कारक एक-वचन है। 'कूड़ै' 'शब्द' 'कूड़ा' से सम्बन्ध-कारक एक-वचन है। स्मरण रखने की बात है कि शब्द 'कूड़ै' शब्द 'कूड़ा' से है, 'कूड़ु' से नहीं।

शब्द 'कूड़ा' संस्कृत के शब्द 'कूटक' का प्राकृत और पंजाबी रूप है, जो विशेषण है और जिसका अर्थ है : 'झूठा, छल में फँसा हुआ']।१।

अर्थ : यह सारा जगत छल रूपी है (जैसे मदारी का सारा तमाशा छल रूप होता है), (इसमें कोई) राजा (है, और कोई) प्रजा, यह भी (मदारी के रुपए की तरह) छल ही है। (इस जगत में कहीं इन राजाओं के) मण्डप और महल (हैं, यह) भी छल रूप हैं और इनमें रहने वाला (राजा) भी भ्रम मात्र है। सोना, चाँदी और इन्हें पहनने वाले भी भ्रम रूप ही हैं, यह शारीरिक आकार (सुन्दर) वस्त्र और (शरीरों का) सौंदर्य यह भी सभी भ्रम ही हैं (प्रभु-मदारी तमाशा देखने आए जीवों को ख़ुश करने हेतु दिखा रहा है)। प्रभु ने (कहीं) मनुष्य बनाए हैं, (कहीं) स्त्रियाँ, यह सभी भी छल रूप हैं, जो (इस स्त्री-पुरुष वाले सम्बंध रूपी छल में) फंस कर भटक रहे हैं।

इस छल में फँसे हुए जीव का छल के साथ प्रेम हो गया है, इसलिए इसे अपना पैदा करने वाला भूल गया है। (इसे याद ही नहीं रहा कि) सारा जगत नश्वर है, किसी से भी मोह नहीं करना चाहिए।

(यह सारा जगत है तो भ्रम, परन्तु) यह भ्रम (सभी को) प्यारा लग रहा है, शहद (जैसा) मीठा लगता है, इस तरह यह भ्रम सभी जीवों को डुबो रहा है। (हे प्रभु!) नानक (तेरे आगे) विनती करता है कि तेरे बिना (यह जगत) छल ही छल है।१।

म: १ ॥

सचु तापरु जाणीऐ जा रिदै सचा होइ ॥
कूड़ की मलु उतरै तनु करे हछा धोइ ॥
सचु तापरु जाणीऐ जा सचि धरे पिआरु ॥
नाउ सुणि मनु रहसीऐ ता पाए मोख दुआरु ॥
सचु तापरु जाणीऐ जा जुगति जाणै जीउ ॥
धरति काइआ साधि कै विचि देइ करता बीउ ॥
सचु तापरु जाणीऐ जा सिख सची लेइ ॥
दइआ जाणै जीअ की किछु पुंनु दानु करेइ ॥
सचु तापरु जाणीऐ जा आतम तीरथि करे निवासु ॥
सतिगुरू नो पुछि कै बहि रहै करे निवासु ॥
सचु सभना होइ दारू पाप कढै धोइ ॥
नानकु वखाणै बेनती जिन सचु पलै होइ ॥२॥

शब्दार्थ : तापरु—तभी। जाणीऐ—जाना जा सकता है। सचु—('कूड़' का उलट) असलियत। रिदै—हृदय में। सचा—प्रभु। कूड़ की मलु—(माया रूपी) छल की मैल। रहसीऐ—खिलता है। मोख दुआरु—मुक्ति का द्वार माया रूपी छल की ज़ंजीरों से छूटने का रास्ता। जुगति—ज़िन्दगी अच्छे ढंग से गुज़ारने की विधि। धरति काइआ—शरीर रूपी धरती। देइ—दे, बोए। करता बीउ—(प्रभु) करतार का ('नाम' रूपी) बीज। सिख—शिक्षा, उपदेश। दइआ जीअ की—प्रत्येक प्राणी पर तरस करना। आतम

तीरथि—आत्मा रूपी तीर्थ पर। बहि रहै—बैठा रहे, मन को विकारों की ओर जाने से रोके।२।

अर्थ : (जगत के झूठे पसारे में से निकल कर) सच्चाई की समझ तभी आती है जब वह सच्चा प्रभु, मनुष्य के हृदय में आ जाए। तभी माया रूपी छल का प्रभाव मन से दूर हो जाता है। (फिर मन के साथ शरीर भी सुन्दर हो जाता है, शारीरक इन्द्रियाँ भी बुरी तरफ से हट जाती हैं, मानो) शरीर धुल कर पवित्र हो जाता है।

(माया के भ्रम से निकल कर, प्रकृति की) सच्चाई की समझ तब आती है, जब मनुष्य उस सत्य में मन जोड़ता है, (तब उस सत्य प्रभु का) नाम सुनकर मनुष्य का मन खिलता है और उसे (माया के बन्धनों से) स्वतंत्र होने का मार्ग मिल जाता है।

जगत की सत्यता (प्रभु) की समझ तब आती है, जब मनुष्य (ईश्वरीय जीवन गुज़ारने की) युक्ति जाने, भाव कि शरीर रूपी धरती को त्यार करके इसमें प्रभु का नाम बोए।

सत्य की परख तब होती है, जब सच्ची शिक्षा (गुरु से) ग्रहण करे और उस (शिक्षा पर चलकर) सभी जीवों पर दया करने की विधि जाने और (ज़रूरतमंदों को) कुछ दान पुन्य करे।

उस अंदर के सत्य के साथ तभी जान-पहचान होती है जब मनुष्य अपने अंतर-तीर्थ पर टिक जाए, अपने गुरु से उपदेश लेकर उस अंदर के तीर्थ पर बैठा रहे, वहाँ ही हमेशा रहे।

नानक विनती करता है, जिन मनुष्यों के हृदय में सच्चाई का मालक प्रभु है, उनके सभी दुखों का इलाज वह स्वयं बन जाता है, (क्योंकि वह) सभी विकारों को (उस हृदय में से) धोकर (बाहर) निकाल देता है (जहाँ वह बस रहा है)।२।

पउड़ी ॥

दानु महिंडा तली खाकु जे मिलै त मसतकि लाईऐ ॥
कूड़ा लालचु छडीऐ होइ इक मनि अलखु धिआईऐ ॥
फलु तेवेहो पाईऐ जेवेही कार कमाईऐ ॥
जे होवै पूरबि लिखिआ ता धूड़ि तिन्हा दी पाईऐ ॥
मति थोड़ी सेव गवाईऐ ॥१०॥

शब्दार्थ : दानु—दान। महिंडा—मेरा, मेरे लिए। तली खाकु—(पैरों के) तलवों की मिट्टी, चर्ण-रज। त—तो। कूड़ा—कूड़ में फँसाने वाला, माया के जाल में फँसाने वाला। अलखु—अदृश्य। तेवेहो—वैसा ही। जेवेही—जैसी। पूरबि—पहले से, आरम्भ से। लिखिआ—पिछले किए कर्मों के संस्कारों का अस्तित्व। मति थोड़ी—अपनी बुद्धि कम हो, यदि अपनी थोड़ी बुद्धि का आश्रय लें।१०।

अर्थ : (मेरी इच्छा है कि मुझे भले लोगों के) पैरों की धूल का दान मिले। अगर यह दान मिले, तो माथे पर लगानी चाहिए। और लालच, जो माया के जाल में फंसाता है, को छोड़कर मन को केवल प्रभु चर्णों में लगाकर उसी की भक्ति करनी चाहिए, (क्योंकि) मनुष्य जैसा कार्य करता है, उसे वैसा ही फल मिल जाता है। परन्तु संत जनों के पैरों की मिट्टी तब ही मिलती है अगर अच्छे भाग्य हों। (भले लोगों का आश्रय छोड़कर) अगर अपनी ही तुच्छ बुद्धि पर भरोसा करें तो (इसके सहारे) की हुई मेहनत व्यर्थ जाती है।१०।

सलोकु मः १ ॥

सचि कालु कूड़ु वरतिआ कलि कालख बेताल ॥
बीउ बीजि पति लै गए अब किउ उगवै दालि ॥
जे इकु होइ त उगवै रुती हू रुति होइ ॥
नानक पाहै बाहरा कोरै रंगु न सोइ ॥

भै विचि खुंबि चड़ाईऐ सरमु पाहु तनि होइ ॥
नानक भगती जे रपै कूड़ै सोइ न कोइ ॥१॥

शब्दार्थ : सचि—सत्य में। सचि कालु—सच्च में काल पड़ गया है, असलीयत की पहचान नहीं रही। कालख—कालापन, विकारों की स्याही। बेताल—भूत-प्रेत। बीउ—नाम रूपी बीज। बीजि—बीज कर। किउ उगवै—नहीं उग सकती। दालि—दाने के दोनों भिन्न भिन्न भाग। इकु—साबुत बीज। रुती हू रुति—ऋतुयों में ऋतु, भाव अच्छी ऋतु, सुहावनी ऋतु। पाहै—पाह, कपड़े को पक्का रँग चढ़ाने के लिए जो उबलते पानी में रँग से पहले डालते हैं। कोरै—कोरे (कपड़े) को। रंगु सोइ—वह (पक्का) रँग जो (होना चाहिए, भाव बढ़िया पक्का रँग। सरमु—मेहनत। रपै—रँगा जाए। कूड़ै—कूड़ की, छल ठग्गी की। सोइ—ख़बर, भिनक।१।

[***स्पष्टीकरण :*** इस श्लोक में दो दृष्टांत दिए गए हैं, पहली ३ पंक्तियों में खेती बीजने का और दूसरी ३ पंक्तियों में कपड़ा रँगने का।

पहले दृष्टांत में बताया गया है कि जैसे साबुत बीज ही उग सकता है, अगर दाना दल दिया जाए तो नहीं उगता, इसी तरह अगर मन में शंका बनी रहे तो 'नाम' बीज उग नहीं सकता, फलीभूत नहीं हो सकता।

दूसरे दृष्टांत में लिखा है कि कोरे कपड़े को पक्का रँग नहीं चढ़ सकता। पहले खुम्ब पर चढ़ाने की ज़रूरत है, फिर रँग देने से पहले पाह देनी पड़ती है। इसी तरह इस कोरे मन को नाम में रँगने के लिए पहले प्रभु के डर रूपी खुम्ब पर चढ़ाने की ज़रूरत है। इस तरह इसका कोरा-पन (निरदयता) दूर हो जाता है, जीव प्रभु के भय में रहकर जीवों पर करुणा करने लग जाता है। फिर इस मन को मेहनत की पाह दी जाए, भाव आलस त्याग कर अग्रसर (उद्यमी) बना रहे। तभी प्रभु के भक्ति रँग में रँगने से सुन्दर रँग वाला हो जाता है।]

अर्थ : (सांसारिक जीवों के हृदय में) सत्य उड़ गया है और झूठ

ही झूठ प्रधान हो रहा है, कलयुग की (पापों की) कालिख के कारण जीव भूत बन रहे हैं, (भाव जगत का मोह प्रबल हो रहा है, जगत के बनाने वाले से नाता बनाने का विचार जीवों के हृदयों में से दूर हो रहा है, और स्मरण के बिना जीव मानों भूत हैं।) जिन्होंने (हरि का नाम अपने हृदय में) बोया है, वह इस जगत से यश कमा कर गए हैं। परन्तु अब नाम का अंकुर नहीं फूटता (क्योंकि मन) दाल की भाँति (टूट) रहे हैं, (भाव यह है कि भ्रमित मन के कारण जीवों का मन नाम में नहीं जुड़ता)। बीज तब ही उगता है अगर बीज साबुत हो और बीजने की ऋतु भी योग्य हो, (इसी तरह प्रभु के नाम का अंकुर भी तब ही फूटता है जब मन एकाग्रता से प्रभु की ओर जुड़ा रहे और प्रातः काल भी गँवाया न जाए)।

हे नानक! अगर लाग न प्रयोग करें तो कोरे कपड़े को (पक्का सुन्दर) रँग नहीं चढ़ता (जो लाग लगाने से चढ़ता है। इसी तरह अगर इस कोरे मन को प्रभु का नाम-रँग देना हो तो पहले इसे) प्रभु के डर रूपी खुम्ब पर चढ़ाएं, फिर मेहनत और उद्यम की पाह दें; (इस के बाद) हे नानक! अगर (इस मन को) प्रभु की भक्ति में रँगा जाए, तो माया का छल इसे छू भी नहीं सकता।१।

मः १ ॥

लबु पापु दुइ राजा महता कूड़ु होआ सिकदारु ॥
कामु नेबु सदि पुछीऐ बहि बहि करे बीचारु ॥
अंधी रयति गिआन विहूणी भाहि भरे मुरदारु ॥
गिआनी नचहि वाजे वावहि रूप करहि सीगारु ॥
उचे कूकहि वादा गावहि जोधा का वीचारु ॥
मूरख पंडित हिकमति हुजति संजै करहि पिआरु ॥
धरमी धरमु करहि गावावहि मंगहि मोख दुआरु ॥
जती सदावहि जुगति न जाणहि छडि बहहि घर बारु ॥

सभु को पूरा आपे होवै घटि न कोई आखै ।।
पति परवाणा पिछै पाईऐ ता नानक तोलिआ जापै ।।२।।

शब्दार्थ : लबु—जीभ का स्वाद। महता—मंत्री। सिकदारु—चौधरी। नेबु—नायब। सदि—बुलाकर। अंधी रयति—कामादि विकारों के अधीन रहकर अंधे हुए जीव। भाहि—तृष्णा की अग्नि। मुरदारु—रिश्वत। भरे मुरदारु—व्यर्थ पूर्ती करती है। गिआनी—दूसरों को उपदेश देने वाले। वावहि—बजाते हैं। रूप करहि—कई वेश बदलते हैं। वादा—झगड़े। जोधा का वीचारु—वीरों की गाथाएँ। हिकमति—चालाकी। हुजति—दलील, बहाने। संजै—माया इकट्ठी करने में। धरमी—स्वयं को धर्म कमाने वाला समझने वाले। गावावहि—गँवा लेते हैं। मोख दुआरु—मुक्ति का द्वार। जती—वह मनुष्य जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में रखा हुआ है। जुगति—ढंग, तरीका। छडि बहहि—छोड़ बैठते हैं। घर बारु—गृहस्थ, घर-घाट। सभु को—प्रत्येक जीव। पूरा—न भूलने वाला, पूर्ण। घटि—कम। पति—इज़्ज़त। परवाना—तोल। पिछै—(तराजु के) पिछले पलड़े में।२।

अर्थ : (जगत में जीवों के लिए) जीभ का स्वाद, मानो, राजा है, पाप मंत्री और झूठ चौधरी है, (इसी लोभ और पाप के दरबार में) काम नायब है, (इसे) बुलाकर सलाह ली जाती है, यही इनका बड़ा सलाहकार है। (इनकी) प्रजा ज्ञान-हीन (होने के कारण) मानो अंधी है और तृष्णा (आग) की बेगार कर रही है।

जो मनुष्य स्वयं को ज्ञानी कहलवाते हैं, वह नाचते हैं, बाजे बजाते हैं और कई प्रकार के वेश बदलते हैं और श्रृंगार करते हैं; वह ज्ञानी ऊँची आवाज़ में चीखते हैं, युद्धों के प्रसंग और वीर गाथाएँ सुनाते हैं।

पढ़े लिखे मूर्ख केवल चालाकियाँ करनी और दलील बनाना ही जानते हैं, (परन्तु) माया इकट्ठी करने में ही जुटे हुए हैं।

(जो व्यक्ति स्वयं को) धर्मी समझते हैं, वह अपनी ओर से (तो)

धर्म के काम करते हैं, लेकिन (सारी मेहनत) गँवा बैठते हैं, (क्योंकि इसके बदले में) मुक्ति का द्वार माँगते हैं, (भाव, धर्म का काम निष्काम होकर नहीं करते, अभी भी वासना में लिप्त हैं)।

(कई ऐसे हैं जो स्वयं को) जती कहलवाते हैं, जती होने का तरीका नहीं जानते (देखा देखी) घर-घाट छोड़ देते हैं। (जिधर देखें) प्रत्येक जीव स्वयं को पूर्णतय: समझदार समझता है। कोई यह नहीं कहता कि मेरे में कोई दोष है। लेकिन हे नानक! तब ही मनुष्य तोल में पूरा उतरता है (भाव, परख में पूरा उतरता है) अगर तराजु के दूसरे पलड़े में (प्रभु की दरगाह में मिली हुई) इज़्ज़त रूपी बाट हो। (भाव, वही मनुष्य दोष-रहत है, जिसे प्रभु की दरगाह में आदर मिले)।२।

म: १ ॥

वदी सु वजगि नानका सचा वेखै सोइ ॥
सभनी छाला मारीआ करता करे सु होइ ॥
अगै जाति न जोरु है अगै जीउ नवे ॥
जिन की लेखै पति पवै चंगे सेई केइ ॥३॥

शब्दार्थ : वदी—(प्रभु की तरफ से) निश्चित की हुई। सु—वही बात। वजगि—लगेगी, प्रक्ट होगी। सचा—सदा स्थिर रहने वाला प्रभु। वेखै—(हर एक जीव की) देखभाल क़र रहा है। सभनी—सभी जीवों ने। छाला मारीआ—अपना बल लगाया है। सु होइ—वही होता है। अगै—अगली दुनिया। जाति—ऊँची या नीची जाति का भेद। जोरु—धक्का, ज़बरदस्ती। सेई केइ—वही कोई कोई (जीव)। लेखै—लेखा होने के समय।३।

अर्थ : जो बात प्रभु की तरफ से निश्चित है वह होकर रहेगी, (क्योंकि) वह सच्चा प्रभु (प्रत्येक जीव की स्वयं) देखभाल कर रहा है। सभी जीव अपना अपना बल प्रयोग करते हैं, पर होता वही है जो

ईश्वर करता है। प्रभु के दरबार में न (किसी ऊँची नीची जाति का भेद) है, न ही (किसी की) ज़बरदस्ती (चल सकती) है, क्योंकि वहाँ उन जीवों से हमारा वास्ता पड़ता है जो अपरिचित हैं (भाव, वह किसी की ऊँची जाति अथवा बल जानते ही नहीं, इसलिए किसी दबाव में नहीं आते)। वहाँ वही कोई कोई मनुष्य भले गिने जाऐंगे, जिन्हें कर्मों का लेखा होने के समय आदर मिलता है (भाव, जिन्होंने जगत में भलाई की थी और इसलिए उन्हें प्रभु के द्वार पर आदर प्राप्त होता है।३।

पउड़ी ॥

धुरि करमु जिना कउ तुधु पाइआ ता तिनी खसमु धिआइआ ॥
एना् जंता कै वसि किछु नाही तुधु वेकी जगतु उपाइआ ॥
इकना नो तूं मेलि लैहि इकि आपहु तुधु खुआइआ ॥
गुर किरपा ते जाणिआ जिथै तुधु आपु बुझाइआ ॥
सहजे ही सचि समाइआ ॥११॥

शब्दार्थ : धुरि—शुरु से, मूल से। करमु—कृपा। तुधु—तू, हे निरंकार! वेकी—कई प्रकार का, कई रंगों का। इकना नो—कई जीवों को। इकि—कई जीव। आपहु—अपने आप से। तुधु—तू, हे प्रभु! खुआइआ—दूर किये हुए। जाणिआ—(तुझे) जान लिया है। जिथै—जिस मनुष्य के अंदर। आपु—अपना आप। बुझाइआ—समझा दिया। सहजे ही—स्वाभाविक ही। सचि—वास्तव में। समाइआ—लीन हो जाता है।११।

अर्थ : (हे प्रभु!) जिन मनुष्यों पर शुरु से तेरी दया होती है, उन्होंनें ही मालिक को (भाव, तुझको) याद किया है। इन जीवों के अपने बस में कुछ नहीं है (कि तेरा नाम ले सकें)। तुम ने भांति भांति का जगत पैदा किया है, कई जीवों को तू अपने साथ जोड़े रखता है, लेकिन कई जीवों को तू स्वयं ही दूर कर देता है।

जिस (भाग्यवान) व्यक्ति के हृदय में तूने स्वयं की सूझ दी, उसने

सतिगुरु की कृपा से तुझे पहचान लिया है, और वह स्वाभाविक ही (अपने) मूल से एक रूप हो गया है।११।

सलोकु मः १ ॥

दुखु दारू सुखु रोगु भइआ जा सुखु तामि न होई ॥
तूं करता करणा मै नाही जा हउ करी न होई ॥१॥
बलिहारी कुदरति वसिआ ॥
तेरा अंतु न जाई लखिआ ॥१॥ रहाउ ॥
जाति महि जोति जोति महि जाता अकल कला भरपूरि रहिआ ॥
तूं सचा साहिबु सिफति सुआलि्उ जिनि कीती सो पारि पइआ ॥
कहु नानक करते कीआ बाता जो किछु करणा सु करि रहिआ ॥२॥

शब्दार्थ : तामि—तब। करणा—करनेवाला। मै नाही—मैं कुछ भी नहीं, मेरी कोई शक्ति नहीं। जा हउ करी—अगर मैं स्वयं को कुछ समझ लूं। न होई—जँचता नहीं। जाति—सृष्टि। जोति—प्रभु का नूर। जोति महि—सभी जीवों में। जाता—देखा जाता है, नज़र आ रहा है। अकल—सम्पूर्ण। कला—टुकड़ा, हिस्सा। अकल कला—जिसके टुकड़े न हों, सम्पूर्ण प्रमात्मा। सुआलि्उ—सुन्दर। जिनि कीती—जिसने (तेरी महिमा) की। नानक—हे नानक! कहु करते कीआ बाता—परमात्मा की बातें कर।२।

अर्थ : (हे प्रभु! तेरी अजीब कुदरत है कि) दुख (जीवों के रोगों का) इलाज (बन जाता) है, और सुख (उनके लिए) दुखों का (कारण) हो जाता है। परन्तु अगर (सच्चा आत्मिक) सुख (जीव को) मिल जाए, तो (दुख) नहीं रहता। हे प्रभु! तू करनहार करतार है (तू स्वयं इन रहस्यों को जानता है), मेरी शक्ति नहीं (कि मैं समझ सकूँ)। अगर मैं इस योग्य ख़ुद को समझूँ, तो यह योग्य नहीं।१।

हे अपनी कुदरत में बस रहे करतार! मैं तुझ से बलिहार जाता हूँ, तेरा अंत नहीं पाया जा सकता।१।रहाउ।

सारी सृष्टि में तेरा ही नूर है, सभी जीवों में तेरा ही प्रकाश है, तू सभी जगह व्यापक है। हे प्रभु! तू हमेशा स्थिर रहने वाला है, तेरी उपमा बड़ी सुन्दर है, जिस जिस ने तेरे गुणों का गायन किया, वह इस संसार-सागर से तर गया। हे नानक! (तू भी) उसी की महिमा कर, (और कह कि) प्रभु को जो अच्छा लगता है, वही हो रहा है (भाव, उसके काम में किसी और का हस्तक्षेप नहीं।२।

मः २ ॥

जोग सबदं गिआन सबदं बेद सबदं ब्राहमणह ॥
खत्री सबदं सूर सबदं सूद्र सबदं पराक्रितह ॥
सरब सबदं एक सबदं जे को जाणै भेउ ॥
नानकु ता का दासु है सोई निरंजन देउ ॥३॥

शब्दार्थ : सबदं—गुरु का उपदेश, गुरु का आदेश। जोग सबदं—योग का धर्म। सबदं ब्राहमणह—ब्रह्मणों का धर्म। पराक्रितह—दूसरों की सेवा करनी, दूसरों का काम करना। सरब सबदं—उत्तम धर्म, सभी धर्मों का धर्म। एक सबदं—एक प्रभु का सुमिरन रूपी धर्म। भेउ—भेद। सोई—वही मनुष्य। निरंजन देउ—प्रभु (का रूप) है।३।

अर्थ : योग का धर्म ज्ञान प्राप्ति करना है (ब्रह्म का विचार करना है), ब्रह्मणों का धर्म वेदों पर चर्चा करना है। क्षत्रियों का धर्म शूरवीरता के काम करना है और शूद्रों का धर्म दूसरों की सेवा करना है, परन्तु सब से उत्तम धर्म यह है कि एक प्रभु को याद किया जाए। जो मनुष्य यह भेद समझता है, नानक उसी का दास है, वह मनुष्य प्रभु का रूप है।३।

मः २ ॥

एक क्रिसनं सरब देवा देव देवा त आतमा ॥
आतमा बासुदेवस्यि जे को जाणै भेउ ॥
नानक ता का दासु है सोई निरंजन देउ ॥४॥

शब्दार्थ : एक क्रिसनं—एक प्रमात्मा। सरब देव आतमा—सभी देवताओं का आत्मा। देव देवा आतमा—देवताओं के देवताओं का आत्मा। त—भी। वासुदेव (जैसे शब्द 'कृष्ण' का अर्थ प्रमात्मा भी है, वैसे ही 'कृष्ण' जी का यह नाम भी परमात्मा के अर्थों में ही लेना है) प्रमात्मा। बासुदेवस्यि—प्रमात्मा का। बासुदेवस्यि आतमा—प्रभु की आत्मा। निरंजन—अंजन (भाव, माया रूपी कालिख) से रहत हरि।४।

अर्थ : एक प्रमात्मा ही सभी देवताओं का आत्मा है, देवताओं के देवताओं का भी आत्मा है। जो मनुष्य प्रभु के आत्मा के भेद को जान लेता है, नानक उस मनुष्य का दास है, वह मनुष्य प्रमात्मा का रूप है।४।

मः १ ॥

कुंभे बधा जलु रहै जल बिनु कुंभु न होइ ॥
गिआन का बधा मनु रहै गुर बिनु गिआनु न होइ ॥५॥

शब्दार्थ : कुंभ—घड़ा। कुंभे—घड़े में ही। बधा—बंधा हुआ रहता है। रहै—रहता है, टिक सकता है। कुंभु न होइ—घड़ा नहीं होता, घड़ा नहीं बन सकता। मनु रहे—मन स्थिर होता है।५।

अर्थ : (जैसे) पानी घड़े में ही स्थिर होता है, (उसी तरह) गुरु के ज्ञान से बँधकर ही मन (एक जगह) स्थिर रह सकता है (भाव, वह विकारों की ओर नहीं जाता), (जैसे) पानी के बिना घड़ा नहीं बन सकता, उसी तरह गुरु के बिना ज्ञान पैदा नहीं हो सकता।५।

पउड़ी ॥

पड़िआ होवै गुनहगारु ता ओमी साधु न मारीऐ ॥
जेहा घाले घालणा तेवेहो नाउ पचारीऐ ॥
ऐसी कला न खेडीऐ जितु दरगह गइआ हारीऐ ॥
पड़िआ अतै ओमीआ वीचारु अगै वीचारीऐ ॥
मुहि चलै सु अगै मारीऐ ॥१२॥

शब्दार्थ : पड़िआ—पढ़ा लिखा मनुष्य। गुनहगारु—बुरे काम करने वाला। ओमी—केवल ओम को ही जानने वाला, अनपढ़ मनुष्य। साधु—भला मनुष्य। न मारीऐ—पिटता नहीं। घालणा घाले—कमाई करे। तेवेहो—वैसा ही। पचारीऐ—मशहूर हो जाता है। कला—खेल। जितु—जिस के कारण। वीचारीऐ—विचारी जाती है, कबूल हो जाती है। मुहि चलै—मुँह के बल द्वारा, जो मनुष्य अपनी मर्ज़ी से चले।१२।

अर्थ : अगर पढ़ा-लिखा मनुष्य बुरे काम करे (तो इसे देखकर अनपढ़ व्यक्ति को घबराना नहीं चाहिए कि पढ़े हुए का यह हाल है तो अनपढ़ का क्या बनेगा! क्योंकि अगर) अनपढ़ व्यक्ति नेकी करने वाला है तो उसे सज़ा नहीं मिलती। मनुष्य जैसा कार्य करता है उसका वैसा ही नाम हो जाता है। (इसलिए) ऐसी खेल नहीं खेलनी चाहिए जिस से (प्रभु के) दरबार में शर्मिंदा होना पड़े।

मनुष्य पढ़ा-लिखा हो चाहे अनपढ़, प्रभु के घर में केवल प्रभु के गुणों की विचार ही कबूल होती है। जो मनुष्य अपनी मर्ज़ी से चलते हैं, वह बाद में पिटते हैं।१२।

सलोकु मः १ ॥

नानक मेरु सरीर का इकु रथु इकु रथवाहु ॥
जुगु जुगु फेरि वटाईअहि गिआनी बुझहि ताहि ॥
सतजुगि रथु संतोख का धरमु अगै रथवाहु ॥
त्रेतै रथु जतै का जोरु अगै रथवाहु ॥
दुआपुरि रथु तपै का सतु अगै रथवाहु ॥
कलजुगि रथु अगनि का कूड़ु अगै रथवाहु ॥१॥

शब्दार्थ : 'मेरु'—जैसे 'मेरू' पर्बत के इर्द गिर्द सारे ग्रह (तारे) घूमते हैं, सारे द्वीपों का यह केन्द्र है और इसमें सोना तथा हीरे मिलते हैं, जैसे माला के १०८ मनकों में सरताज मनका 'मेरू' है, जैसे मोतियों के हार

का शिरोमणी मोती 'मेरू' कहलाता है, वैसे प्रभु की रचना की अनगिनत योनियों में शिरोमणी मनुष्य योनि 'मेरू' कहलाती है तथा मनुष्य का शरीर बाकी सब योनियों के शरीरों में 'मेरू' है। मेरु सरीर का—(शरीरों में से) मेरू शरीर का, (सभी योनियों के शरीरों में से) मेरु शरीर का, शिरोमणी शरीर का, भाव, मनुष्य शरीर के लिए। रथु—(काठ उपनिषद में मनुष्य के शरीर को भी रथ से उपमा दी गई है; भाव, शरीर को रथ समझें और आत्मा को इस रथ का रथवाही जानें)। रथवाहु—रथ को चलाने वाला। जुगु जुगु—हर युग में। [जुगु—सृष्टि की विशेष आयु को 'युग' कहते हैं। युग गिनती में चार हैं—सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग। हरेक युग की आयु क्रमानुसार १७२८०००, १२९६०००, ८६४००० और ४३२००० वर्ष (मनुष्यों के वर्ष) है; यह सारा समय मिलकर 'महायुग' बनता है। कहा जाता है कि प्रत्येक युग की आयु घटने से उस में रह रहे मनुष्यों के शारीरक बल व आचरण में भी कमी आ जाती है।] वटाईअहि—बदलते रहते हैं। गिआनी—ज्ञानवान। ताहि—इस बात को। सतजुगि—सतियुग में। त्रेतै—त्रेता युग में। सतु—ऊँचा आचरण।१।

अर्थ : हे नानक! चौरासी लाख योनियों में से शिरोमणि मनुष्य-देही का एक रथ है और एक रथवान है (भाव, यह जीवन का एक लम्बा सफर है, मनुष्य मुसाफिर है, इस लम्बे सफर को आसान ढंग से तय करने के लिये, जीव समय के प्रभाव में अपनी मति अनुसार किसी न किसी के नेतृत्व में चल रहे हैं, किसी न किसी का आश्रय देख रहे हैं। परन्तु ज्यों ज्यों समय गुज़र रहा है, जीवों के स्वभाव बदल रहे हैं। इसलिए जीवों का अपना जीवन-ध्येय और जीवन-मनोरथ भी बदल रहा है, इसलिए प्रत्येक युग में यह रथ और रथवाही बार बार बदलते रहते हैं, इस राज़ को ज्ञानी लोग समझते हैं।

सतियुग में 'संतोष' मनुष्य-देही का रथ होता है और धर्म उसका रथवान होता है (भाव, जब मनुष्यों की ज़िन्दगी का निशाना आमतौर पर धर्म हो तो उनके स्वभाव में 'संतोष' प्रबल हो जाता है। मानो, यही जीव

सतियुगी हैं, सतियुग में बस रहे हैं)।

त्रेता युग में मनुष्य-देही का रथ 'जतु' है और इसका रथवान 'जोरु' है (भाव, जब आमतौर पर मनुष्यों की ज़िन्दगी का निशाना 'शूरवीरता' हो तब स्वाभाविक ही 'जतु' उनकी स्वारी होता है। 'शूरवीरता' से प्यार करने वाले मनुष्य में 'जती' रहने का जज़्बा प्रबल होता है)।

द्वापर युग में मनुष्य-देह का रथ 'तपु' है और 'सतु' इसका रथवान होता है (भाव, जब मनुष्यों की ज़िन्दगी का निशाना ऊँचा आचरण हो, तब स्वाभाविक ही 'तपु' उनकी सवारी होता है। ऊँचे आचरण के आशिक अपनी शारीरिक इन्द्रियों को वासना से बचाने के लिए कई दुख उठाते हैं)।

कलियुग में शरीर का रथ तृष्णा की अग्नि है और 'आग' रूपी रथ के आगे 'कूड़ु' रथवान है (भाव, जब मनुष्यों की ज़िन्दगी का मात्र लक्ष्य धोखा आदि हो, तब स्वाभाविक ही 'तृष्णा' रूपी अग्नि उनकी सवारी होती है। झूठ और ठग्गी के हाथ बिके हुये मनुष्यों के अन्दर तृष्णा की आग भड़कती है।

स्पष्टीकरण : इस श्लोक में गुरु नानक जी हिन्दु धर्म द्वारा किये हुये युगों के विभाजन को आधार बनाकर कहते हैं कि सतियुग, त्रेता युग, द्वापर और कलियुग की पहचान के लिए जीवों की प्रकृति की ओर देखें। जहाँ 'धर्म' प्रबल है वहाँ मानो, 'सतियुग' का राज्य है, और जहाँ 'झूठ' प्रधान हो, मानो, वहाँ 'कलियुग' का राज्य है। युगों का जगत पर प्रभाव नहीं है, बल्कि जीवों के आचरण बदलने से मानो युग बदल गया है।१।

म: १ ॥

साम कहै सेतंबरु सुआमी सच महि आछै साचि रहे ॥
सभु को सचि समावै ॥
रिगु कहै रहिआ भरपूरि ॥
राम नामु देवा महि सूरु ॥

नाइ लइऐ पराछत जाहि ॥
नानक तउ मोखंतरु पाहि ॥
जुज महि जोरि छली चंद्रावलि कान्ह क्रिसनु जादमु भइआ ॥
पारजातु गोपी लै आइआ बिंद्राबन महि रंगु कीआ ॥
कलि महि बेदु अथरबणु हूआ नाउ खुदाई अलहु भइआ ॥
नील बसत्र ले कपड़े पहिरे तुरक पठाणी अमलु कीआ ॥
चारे वेद होइ सचिआर ॥
पड़हि गुणहि तिन् चार वीचार ॥
भाउ भगति करि नीचु सदाए ॥
तउ नानक मोखंतरु पाए ॥२॥

शब्दार्थ : पारजातु : (इन्द्र के बाग 'नंदन' में पाँच श्रेष्ठ वृक्षों में से एक का नाम 'पारजात' है। जब देवताओं ने मिलकर समुद्र मंथन किया था तो उस में से चौदह रत्न निकले, जिनमें से पारजात वृक्ष भी एक था। कृष्ण ने वह वृक्ष उस बाग में से उखाड़ कर अपनी प्रिय 'सत्यभामा' के बाग में लगा दिया था। यह 'सत्यभामा' राजा सत्रा-जित की पुत्री और श्री कृष्ण जी की प्यारी स्त्री थी)। इन्द्र के बाग में पाँच बढ़िया जाति के वृक्ष बताये गये हैं : मंदार, पारजात, सन्तान, कल्पवृक्ष तथा हरि चन्दन।

चन्द्रावलि : एक गोपी का नाम था। यह राधा की चचेरी बहन थी। राधा के पिता वृषभान के बड़े भाई चन्द्रभान की यह बेटी थी। इसकी शादी गोवर्धन से हुई थी, जो करला नाम के गाँव का रहने वाला था।

साम—तीसरा वेद, पहले दो 'ऋग' और 'यजुर' हैं। आछै—रहता है। भरपूरि—व्यापक। राम नामु—(श्री) राम (जी) का नाम। देवा महि—देवताओं में। सूरु—सूर्य। नाइ लइऐ—अगर नाम का जाप करें। पराछत—पाप। जोरि— बल द्वारा। जादमु—'यादव' कुल में पैदा हुआ श्री कृष्ण। गोपी—'सत्यभामा'। कलि महि—कलियुग में। अलहु—प्रभु,

प्रमात्मा। अमलु—राज्य। तुरक पठाणी—तुर्कों और पठानों ने। पड़हि—जो पढ़ते हैं। गुणहि—जो विचार करते हैं। तिन् वीचार—उनके विचार। चार—सुन्दर।

अर्थ के बारे में स्पष्टीकरण : 'कलि महि बेदु अथरबणु हूआ'—जैसे इस पंक्ति में 'कलियुग' के साथ 'बेदु अथरबणु' प्रयोग हुआ है, इसी तरह पहली पंक्तियों में शब्द 'साम' के साथ 'दुआपर' प्रयोग करना है। 'नाउ खुदाई अलहु भइआ'—कलियुग में 'स्वामी' का नाम 'ख़ुदा' और 'अलह' प्रधान हो गया। कलि........कीआ—कलियुग में अथर्व वेद प्रधान हो गया है, जीवों का मार्ग-दर्शन अथर्व वेद कर रहा है, भाव कलियुग में जादू-टोना, वैर-विरोध और जुल्म प्रधान है, भाव 'कलजुगि रथु अगनि का, कुड़ु अगै रथवाहु'। तुर्कों व पठानों का राज्य हो गया है, जिन्होंने नीले वस्त्र धारन किए हुए हैं, उन्हीं की वजह से अब 'स्वामी' का नाम 'ख़ुदा' या 'अलह' चल गया है। 'जुज महि.... कान् क्रिसन जादमु भइआ'—द्वापर में 'स्वामी' का नाम 'यादव', कृष्ण व कान्हा चलता था। 'कौन सा कृष्ण' ? जो 'कान्हा' सांवले रँग का था और यादवों की कुल में से था, जिसने बल द्वारा चन्द्रावली को छल लिया था, जो (अपनी) गोपी (सत्यभामा) की खातिर 'पारजात' वृक्ष इन्द्र के बाग से उखाड़ लाया था और जिसने वृंदावन में कई आश्चर्यजनक काम किए थे। ऋग वेद कहता है कि (त्रेता युग में) श्री राम का नाम ही सभी देवताओं में सूर्य की भाँति चमकता था, भाव त्रेता युग में स्वामि का नाम 'राम' प्रधान था, उसी राम जी को ही 'भरपूरि रहिआ' समझा गया, उसी की पूजा स्वामि की पूजा के समान होने लगी।२।

नोट : गुरु जी किसी वेद का किसी विशेष युग से सम्बन्ध नहीं बता रहे। जैसे पहले श्लोक में हर काल में जीवों के स्वभाव के परिवर्तन का उल्लेख है, वैसे ही यहाँ है। 'साम', 'ऋग', 'जुज' और 'अथर्व'. को क्रमानुसार 'सेतम्बरु', 'राम', 'जादमु' और 'अलहु' के साथ प्रयोग किया गया है। प्रत्येक वेद के नाम का पहला अक्षर परमात्मा के उस समय के

प्रधान नाम के पहले अक्षर से मिलता है।

अर्थ : साम वेद कहता है कि (सतियुग में) जगत के स्वामि का नाम 'सेतम्बरु' (प्रसिद्ध) है (भाव, तब परमात्मा को 'सेतम्बरु' मान कर पूजा जाता था), जो हमेशा सत्य में टिका रहता है, तब प्रत्येक जीव सत्य में लीन रहता है ('सतजुगि रथु संतोख का धरमु अगै रथवाहु ॥') (जब आमतौर पर हरेक जीव 'सत्य' और 'धर्म' में दृढ़ था, उस समय 'सतियुग' था)।

ऋग वेद कहता है कि (भाव, त्रेता युग में) राम का नाम सभी देवताओं में सूर्य की भांति चमकता है, वही सर्व व्यापक है। हे नानक! (ऋग वेद कहता है कि) राम का नाम लेने से पाप दूर हो जाते हैं और जीव मुक्त हो जाता है।

यजुर वेद में (भाव, द्वापर युग में) जगत के स्वामि का नाम सांवला 'जादमु' कृष्ण प्रसिद्ध हो गया, जिसने बल द्वारा चन्द्रावली को छल लिया था, जो अपनी गोपी (सत्यभामा) के लिए पारजात वृक्ष (इन्द्र के बाग में से) ले आया था और जिसने वृंदावन में खेल-तमाशे किए थे।

कलियुग में अथर्व वेद प्रधान हो गया है, जगत के स्वामी का नाम 'ख़ुदा' व 'अलह' हो गया है, तुर्कों व पठानों का राज्य हो गया है, जिन्होंने नीले वस्त्र पहने हुए हैं।

चारों वेद सच्चे हो गए हैं (भाव, प्रत्येक युग में जगत् के स्वामि का नाम भिन्न भिन्न चलता रहा, यह धारणा रही है कि जो जो मनुष्य 'सेतम्बर', 'राम', 'कृष्ण' और 'अलह' का नाम जपेगा, वही मुक्ति पाएगा), और जो जो मनुष्य इन वेदों को पढ़ते व विचार करते हैं (भाव, अपने समय में जो मनुष्य उपरोक्त यकीन द्वारा अपने धर्म-पुस्तक पढ़ते रहे हैं) वे अच्छे विद्वान हुए हैं। (परन्तु) हे नानक! जब मनुष्य प्रेमा-भक्ति कर के अपने आप को निम्न कहलाता है (भाव, अहँकार-रहत रहता है) तब वह मुक्ति प्राप्त करता है।२।

पउड़ी ॥

सतिगुर विटहु वारिआ जितु मिलिऐ खसमु समालिआ ॥
जिनि करि उपदेसु गिआन अंजन दीआ इन्ही नेत्री जगतु निहालिआ ॥
खसमु छोडि दूजै लगे डुबे से वणजारिआ ॥
सतिगुरू है बोहिथा विरलै किनै वीचारिआ ॥
करि किरपा पारि उतारिआ ॥१३॥

शब्दार्थ : विटहु—से। जितु मिलिऐ—जिस गुरु को मिलने से। जिनि—जिस (गुरु) ने। जगतु निहालिआ—जगत की वास्तविक्ता को जान लिया। दूजै—दूसरे में, किसी और में। वणजारिआ—बनजारे, व्यापार करने वाले, जगत में व्यापार करने आये हुये जीव।१३।

अर्थ : मैं अपने सच्चे गुरु पर कुर्बान जाता हूँ, जिसे मिलकर मैं मालक प्रभु को याद करता हूँ और जिसने अपनी शिक्षा देकर (मानो) ज्ञान का सुर्मा दे दिया है, (जिसकी कृपा द्वारा) मुझे इस जगत की वास्तविक्ता का ज्ञान हो गया है। (और यह समझ लिया है कि) जो मनुष्य मालिक को छोड़कर किसी और से अपना मन जोड़ रहे हैं, वह इस संसार (सागर) में डूब गए हैं। (मेरे सतिगुरु ने) कृपा कर के मुझे (इस संसार रूपी सागर से) पार कर दिया है।१३।

सलोकु मः १ ॥

सिंमल रुखु सराइरा अति दीरघु अति मुचु ॥
ओइ जि आवहि आस करि जाइ निरासे कितु ॥
फल फिके फुल बकबके कंमि न आवहि पत ॥
मिठतु नीवी नानका गुण चंगिआईआ ततु ॥
सभु को निवै आप कउ पर कउ निवै न कोइ ॥
धरि ताराजू तोलीऐ निवै सु गउरा होइ ॥

अपराधी दूणा निवै जो हंता मिरगाहि ।।
सीसि निवाइऐ किआ थीऐ जा रिदै कुसुधे जाहि ।।१।।

शब्दार्थ : सिंमल—सिम्बल। रुखु—वृक्ष। सराइरा—सीधा। दीरघु—लम्बा। मुचु—बड़ा, मोटा। कितु—क्यों। पत—पत्ते। मिठतु—मिठास। नीवी—निम्न रहने में। ततु—सार। आप कउ—अपने मतलब के लिए। गउरा—भारी। हंता—शिकारी, मारने वाला। सीसि निवाइऐ—सिर झुकाने से। कुसुधे—खोटे।१।

अर्थ : सिम्बल का वृक्ष कितना सीधा, लम्बा और मोटा होता है, (परन्तु) वह पक्षी (जो फल खाने की) इच्छा से (इस पर) आकर बैठते हैं, वह निराश होकर क्यों जाते हैं ? इसका कारण यह है कि यह वृक्ष चाहे इतना ऊँचा, लम्बा और मोटा है, परन्तु (इसके) फल फीके होते हैं और फूल स्वादहीन होते हैं, पत्ते भी किसी काम नहीं आते। हे नानक! विनम्र रहने में मिठास है, गुण हैं, इसी में सभी गुणों का सार है। (चाहे आमतौर पर) सभी जीव अपने स्वार्थ के लिए झुकते हैं, किसी और के लिए नहीं (यह भी देख लें कि) अगर तराजु पर रखकर तोला जाए (तो) नीचे का पलड़ा भारी होता है। (भाव जो झुकता है वही बड़ा गिना जाता है)। (परन्तु झुकना मन से झुकना है, दिखाने मात्र नहीं, शरीर से तो) शिकारी जो मृग मारता है वह भी दुगना झुकता है, पर सिर्फ सिर झुकाने से अंदर से बुराई नहीं मिटती, तो इसका कोई लाभ नहीं।१।

मः १ ।।

पड़ि पुसतक संधिआ बादं ।।
सिल पूजसि बगुल समाधं ।।
मुखि झूठ बिभूखण सारं ।।
त्रैपाल तिहाल बिचारं ।।

गलि माला तिलकु लिलाटं ॥
दुइ धोती बसत्र कपाटं ॥
जे जाणसि ब्रहमं करमं ॥
सभि फोकट निसचउ करमं ॥
कहु नानक निहचउ धिआवै ॥
विणु सतिगुर वाट न पावै ॥२॥

शब्दार्थ : पुसतक—वेदादि धर्म-शास्त्र। बादं—चर्चा। सिल—पत्थर की मूर्ति। बगुल—बगुलों की भाँति। बिभूखण—गहने। सारं—सुन्दर। त्रैपाल—तीन पंक्तियों वाली, गायत्री मंत्र। गायत्री एक बड़े पवित्र छंद का नाम है जिसे हर एक ब्रह्मण संध्या करते समय तथा कई और समयों में भी बड़ी श्रद्धा से पढ़ता है। (हिन्दु लोगों का विश्वास है कि इस मंत्र का जाप करने से सभी पाप दूर हो जाते हैं। यह मंत्र ऋग वेद के तीसरे मँडल में ऐसे लिखा है:

तत्सवितुर्व रेगृय भर्गी देवस्य धीमही
धियो यो नः प्रचोदयात् ।।ऋग्।।३।।६२।।१०।।

तिहाल—तीन बार। लिलाटं—मात्थे पर। कपाटं—सिर पर। ब्रहमं करमं—ब्रह्म के कर्म, प्रभु (की बंदगी) के काम। फोकट—व्यर्थ। निसचउ—निश्चय कर के, ज़रूर, यकीनन। निहचउ—श्रद्धा द्वारा। वाट—रास्ता।२।

अर्थ : (पंडित वेदादि) पुस्तकें पढ़कर संध्या करता है और (औरों से) चर्चा करता है, मूर्ति पूजता है और बगुले की भांति स्माधि लगाता है, मुँह से झूठ बोलता है, (परन्तु उस झूठ को) बड़े सुन्दर विभूषणों की तरह सुन्दर बना लेता है, (रोज़ाना) तीन बार गायत्री मंत्र का जाप करता है, गले में माला रखता है, मात्थे पर तिलक लगाता है, (हमेशा) दो धोतियाँ पास रखता है और (संध्या के समय) सिर पर एक वस्त्र धारण कर लेता है।

परन्तु अगर यह पंडित प्रभु (की बंदगी) का काम जानता हो, तब यकीन जानो कि यह सब काम व्यर्थ है। कह, हे नानक! (मनुष्य) श्रद्धा से प्रभु को याद करे—सिर्फ यही गुणकारी रास्ता है, (परन्तु) यह रास्ता सच्चे गुरु के बिना नहीं मिलता।२।

पउड़ी ॥

कपड़ु रूपु सुहावणा छडि दुनीआ अंदरि जावणा ॥
मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा ॥
हुकम कीए मनि भावदे राहि भीड़ै अगै जावणा ॥
नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा ॥
करि अउगण पछोतावणा ॥१४॥

शब्दार्थ : कपड़ु—शरीर रूपी कपड़ा। राहि भीड़ै—तँग रास्ते में से। अगै—मरने के बाद यह नाश्वान जगत छोड़कर। दोजकि—नरक में। चालिआ—भेजा जाता है। ता—तब, उस समय। खरा—बहुत।१४।

अर्थ : यह सुन्दर शरीर और रँग-रूप (इसी) जगत में (जीवों ने) छोड़कर चले जाना है। (प्रत्येक जीव ने) अपने द्वारा किए अच्छे और बुरे कर्मों का फल स्वयं भोगना है। जिस मनुष्य ने यहाँ मन-मानियाँ की हैं उसे आगे (मरने के बाद) तंग रास्तों से गुज़रना पड़ेगा (भाव, जिन्होंने यहाँ लोगों पर जुल्म किए हैं, उन्हें आगे जाकर कष्ट सहने होंगे)। (ऐसा जीव) नंगा (किया जाता है, भाव उसके पापों को उसके समक्ष रखा जाता है), नरक में भेजा जाता है और उस समय (उसे स्वयं का) बड़ा भयानक रूप दिखाई देता है। बुरे काम करके अंत में पश्चाताप करना पड़ता है।१४।

सलोकु मः १ ॥

दइआ कपाह संतोखु सूतु जतु गंढी सतु वटु ॥
एहु जनेऊ जीअ का हई त पाडे घतु ॥

ना एहु तुटै न मलु लगै ना एहु जलै न जाइ ॥
धंनु सु माणस नानका जो गलि चले पाइ ॥
चउकड़ि मुलि अणाइआ बहि चउकै पाइआ ॥
सिखा कंनि चड़ाईआ गुरु ब्राहमणु थिआ ॥
ओहु मुआ ओहु झड़ि पइआ वेतगा गइआ ॥१॥

शब्दार्थ : दइआ—दया, प्यार, रहम। जतु—(स्वयं को) काबू में रखना। गंढी—गाँठें। सतु—पवित्र आचरण। जीअ का—आत्मा के लिए। हई—अगर तेरे पास है। त—तो। न जाइ—न ही यह जनेऊ गुम होता है। चले पाइ—पहन चलें हैं, जिन्होंने ने यह धारण कर लिया है। चउकड़ि—चार कोड़ियों द्वारा। अणाइआ—मँगवाया। सिखा—शिक्षा, उपदेश। चड़ाईआ—दी, चढ़ा दी। थिआ—हो गया।१।

अर्थ : हे पंडित! यदि (तेरे पास) यह आत्मा के काम आने वाला जनेऊ है तो (मेरे गले में) डाल दे—यह जनेऊ जिसकी कपास दया हो, जिसका सूत संतोष हो, जिसकी गाँठें जत की हों, जिसका बल उच्च आचरण हो। (हे पंडित!) ऐसा जनेऊ न टूटता है, न ही इसे मैल लगती है, न ही यह जलता है और न ही यह गुम होता है। हे नानक! वह मनुष्य भाग्यशाली हैं, जिन्होंने यह जनेऊ धारण किया है।

(हे पंडित! यह जनेऊ जो तूने धारण किया हुआ है, यह तो तुम ने) चार कोड़ियां देकर ख़रीदा है, (अपने यजमान के) चौके में बैठ कर (उसके गले में) डाल दिया है, (फिर तुमने उसके) कान में उपदेश दिया (कि आज से तेरा) गुरु ब्रह्मण हो गया। (कुछ समय बाद जब) वह (यजमान) मर गया (तो) वह जनेऊ उसके शरीर के साथ ही जल गया अथवा उतर गया, परन्तु आत्मा के साथ नहीं गया, इसलिए वह यजमान (बेचारा) जनेऊ के बगैर ही (संसार से) गया।१।

म : १ ॥

लख चोरीआ लख जारीआ लख कूड़ीआ लख गालि ॥
लख ठगीआ पहिनामीआ राति दिनसु जीअ नालि ॥
तगु कपाहहु कतीऐ बाम्‌णु वटे आइ ॥
कुहि बकरा रिंनि् खाइआ सभु को आखै पाइ ॥
होइ पुराणा सुटीऐ भी फिरि पाईऐ होरु ॥
नानक तगु न तुटई जे तगि होवै जोरु ॥२॥

शब्दार्थ : कूड़ीआ—झूठ। पहिनामीआ—अमानत में ख़यानत करनी। जीअ नालि—अपने मन के साथ, छुप छुप कर। तगु—धागा। वटे आइ—बट कर देता है (जनेऊ बनाकर देता है)। कुहि—काट कर। रिंनि्—पका कर [कुहि बकरा रिंनि्—इन शब्दों का पद-छेद किसी और प्रकार नहीं हो सकता। जो सज्जन करते हैं वे प्रत्यक्ष रूप में गुरवाणी के व्याकरण से अपनी नावाकफियत प्रक्ट करते हैं। 'कुहिब करारि न' कहने वाले सज्जन यह भूल जाते हैं कि 'रि' की (ं) 'न' की (ि) तथा (्) साथ नहीं रहे। खोजी सज्जन ज्यों ज्यों गुरवाणी के व्याकरण की ओर ध्यान देंगे तो उन्हें पता चलेगा कि वाणी की एक भी मात्रा आगे पीछे करने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। इसी नावाकफियत के कारण सब टीकाकार निम्नलिखित पंक्ति के अशुद्ध अर्थ करते चले आये हैं :

इकु बिंनि दुगण जु तउ रहै जा सुमंत्रि मानवहि लहि ॥
जालपा पदारथ इतड़े गुर अमरदासि डिठै मिलहि ॥५॥१४॥

(सवईए महले तीजे के)

'इकु बिंनि' का अर्थ अब तक 'एक के बिना' ही होता आया है। इस बात की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया गया कि 'बिनु' और 'बिंनि' भिन्न भिन्न शब्द हैं। शब्द 'बिनु' का प्राकृत रूप 'विणु' है जो संस्कृत के शब्द 'बिना' का बिगड़ा रूप है। सरसरी नज़र से ही पता चल जाता है कि 'बिनु' तथा

'बिंनि' में बहुत अन्तर है। इसी प्रकार 'कुहि बकरा रिंनि् खाइआ' को 'कुहिब करारि न खाइआ' पढ़ने वाले सज्जन स्वयं ही देख लें कि वे कितनी बड़ी भूल कर रहे हैं।]

सभु को—प्रत्येक जीव, (परिवार का) प्रत्येक सदस्य। पाइ—(जनेऊ) धारण किया। तगि—धागे में, जनेऊ में।

अर्थ : मनुष्य लाखों चोरियाँ, पर-स्त्री गमन करता है, लाखों झूठ बोलता है और गालियाँ देता है। दिन रात लोगों से चोरी छिपे ठग्गियाँ और अमानत में ख़यानत करता है। (यह तो है मनुष्य की अन्तर्आत्मक दशा, परन्तु बाहर वह क्या करता है कि) कपास से धागा बनाता है और ब्रह्मण (यजमान के घर) आकर (उस धागे को) बट देता है। (घर आए हुए सभी रिश्तेदारों को) बकरा काट कर व पका कर खिलाया जाता है, (घर का) प्रत्येक सदस्य कहता है 'जनेऊ धारण किया गया है।' जब यह जनेऊ पुराना हो जाता है तो फेंक दिया जाता है, और इसकी जगह नया जनेऊ डाल लिया जाता है। हे नानक! अगर धागे में शक्ति हो (भाव, यदि आत्मा के काम आने वाला, आत्मा को बल देने वाला कोई जनेऊ हो) तो वह धागा टूटता नहीं।२।

मः १ ॥

नाइ मंनिऐ पति ऊपजै सालाही सचु सूतु ॥
दरगह अंदरि पाईऐ तगु न तूटसि पूत ॥३॥

शब्दार्थ : नाइ मंनिऐ—अगर (प्रभु का) नाम हृदय में टिका लें। पति—इज़्ज़त, आदर। सालाही—सालाह ही, सालाह ई, प्रभु की महिमा करनी ही। सचु—हमेशा रहने वाला। पूत—पवित्र, शुद्ध (तगु)। न तूटसि—नहीं टूटेगा।३।

अर्थ : (कपास से बने हुए सूत का जनेऊ धारण करके प्रभु के दरबार में सुखी होने की आशा करनी व्यर्थ है, वहाँ तो तभी) आदर मिलता

है अगर प्रभु का नाम हृदय में पक्का कर लें, (क्योंकि) प्रभु की महिमा ही सच्चा जनेऊ है, (इस सच्चे जनेऊ को धारण करने से) वहाँ आदर मिलता है और यह (कभी) टूटता भी नहीं।३।

मः १ ॥

तगु न इंद्री तगु न नारी ॥
भलके थुक पवै नित दाड़ी ॥
तगु न पैरी तगु न हथी ॥
तगु न जिहवा तगु न अखी ॥
वेतगा आपे वतै ॥
वटि धागे अवरा घतै ॥
लै भाड़ि करे वीआहु ॥
कढि कागलु दसे राहु ॥
सुणि वेखहु लोका एहु विडाणु ॥
मनि अंधा नाउ सुजाणु ॥४॥

शब्दार्थ : इन्द्री—शारीरिक इन्द्रियों को। नारी—नाड़ियाँ। भलके—हर रोज़, रोज़ाना। दाड़ी थुक पवै—अपमान होता है। वतै—भटकता है। भाड़ि—भाड़ा, किराया, दक्षिणा, मज़दूरी। कागलु—कागज़, पत्री। एहु विडाणु—यह आश्चर्यजनक घटना। सुजाणु—ज्ञानी, पंडित।४।

अर्थ : (पंडित ने अपनी) इन्द्रियों तथा नाड़ियों को (ऐसा) जनेऊ नहीं पहनाया (कि वह इन्द्रिय-विकारों की ओर न जाएँ, इसलिए) प्रतिदिन उसका अपमान होता है। पैरों को (ऐसा) जनेऊ नहीं पहनाया (कि वह ग़लत दिशा में न जाएँ), हाथों को जनेऊ नहीं पहनाया (कि वह बुरे काम न करें), जीभ को (कोई) जनेऊ नहीं पहनाया (कि पराई निन्दा न करे), आँखों को (ऐसा) जनेऊ नहीं पहनाया (कि पराई स्त्री को न देखें)। इस

तरह के जनेऊ से रहत, वह स्वयं तो भटकता फिरता है, परन्तु (कपास के सूत के) धागे बना बनाकर औरों को देता है, (अपने ही यजमानों की बेटियों के) विवाह दक्षिणा लेकर करता है और पत्री सोध कर उन्हें मार्ग बताता है। हे लोगो! सुनो, देखो यह आश्चर्यजनक तमाशा! (पंडित स्वयं तो) मन से अँधा है (भाव अज्ञानी है), (परन्तु अपना) नाम (रखवाया हुआ है) ज्ञानी।४।

पउड़ी ॥

साहिबु होइ दइआलु किरपा करे
ता साई कार कराइसी ॥
सो सेवकु सेवा करे जिस नो हुकमु मनाइसी ॥
हुकमि मंनिऐ होवै परवाणु ता खसमै का महलु पाइसी ॥
खसमै भावै सो करे मनहु चिंदिआ सो फलु पाइसी ॥
ता दरगह पैधा जाइसी ॥१५॥

शब्दार्थ : साई कार—वही काम (जो उसे अच्छा लगता है)। हुकमि मंनिऐ—अगर प्रभु की आज्ञा का पालन करें। परवाणु—(दरगह में) कबूल। खसमै का महलु—प्रभु-पति का दरबार, वह स्थान जहाँ प्रभु-पति साक्षात प्रक्ट होता है। मनहु चिंदिआ—मन-इच्छित। पैधा—सिरोपाउ लेकर, आदर से।१५।

अर्थ : (जिस सेवक पर प्रभु) दयालु हो जाये, कृपा करे, तो उससे वही कार्य करवाता है (जो उसे अच्छा लगता है), जिसे वह अपनी आज्ञा में चलाता है, वह सेवक (प्रभु-पति की) सेवा करता है, प्रभु की आज्ञा में प्रसन्न रहने के कारण सेवक (प्रभु के द्वार पर) कबूल हो जाता है और मालिक का घर ढूँढ लेता है। जब सेवक वही काम करता है जो मालिक को अच्छा लगता है तो उसे मन-इच्छित फल मिलता है, और वह प्रभु की दरगाह में आदर से जाता है।१५।

सलोकु मः १ ॥

गऊ बिराहमण कउ करु लावहु, गोबरि तरणु न जाई ॥
धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछां खाई ॥
अंतिर पूजा पड़हि कतेबा संजमु तुरका भाई ॥
छोडीले पाखंडा ॥
नामि लइऐ जाहि तरंदा ॥१॥

शब्दार्थ : करु—कर, महसूल। लावहु—तुम लगाते हो। गोबरि—गोबर से। तै—और। जपमाली—माला। धानु—पदार्थ, भोजन। मलेछां—मलेच्छों का, मुस्लमानों का। खाई—खाता है। अंतिर—अंदर छिप कर। संजमु—मर्यादा। तुरका—तुर्कों वाली, मुसलमानों वाली। भाई—हे भाई! छोडीले—छोड़ दे। नामि लइऐ—अगर नाम लेगा। जाहि तरंदा—तर जाएगा।१।

अर्थ : हे भाई! (तू नदी के किनारे बैठकर) गाय और ब्रह्मण को कर लगाता है (भाव, गाय और ब्रह्मण को पार करने का महसूल लेता है), (तू कभी यह नहीं सोचता कि उस गाय के) गोबर से (लेप करके, जगत से) पार नहीं हुआ जा सकता। धोती (पहनता है), तिलक (माथे) पर लगाता है और माला (फेरता है), परन्तु पदार्थ मलेच्छों का खाता है (भाव, पदार्थ उन से लेकर सेवन करता है, जिन्हें तू मलेच्छ कहता है)। अन्दर बैठकर (भाव, तुर्क हाकमों से चोरी छिपे) पूजा करता है, (बाहर मुसलमानों को दिखाने के लिए) कुरान आदि पढ़ता है, और मुसलमानों वाली मर्यादा रखता है।

यह पाखण्ड छोड़ दे। अगर प्रभु का नाम लेगा, तो ही (संसार-समुद्र से) पार होगा।१।

मः १ ॥
माणस खाणे करहि निवाज ॥
छुरी वगाइनि तिन गलि ताग ॥
तिन घरि ब्राहमण पूरहि नाद ॥
उन्ा भि आवहि ओई साद ॥
कूड़ी रासि कूड़ा वापारु ॥
कूड़ु बोलि करहि आहारु ॥
सरम धरम का डेरा दूरि ॥
नानक कूड़ु रहिआ भरपूरि ॥
मथै टिका तेड़ि धोती कखाई ॥
हथि छुरी जगत कासाई ॥
नील वसत्र पहिरि होवहि परवाणु ॥
मलेछ धानु ले पूजहि पुराणु ॥
अभाखिआ का कुठा बकरा खाणा ॥
चउके उपरि किसै न जाणा ॥
दे कै चउका कढी कार ॥
उपरि आइ बैठे कूड़िआर ॥
मतु भिटै वे मतु भिटै ॥
इहु अंनु असाडा फिटै ॥
तनि फिटै फेड़ करेनि ॥
मनि जूठै चुली भरेनि ॥
कहु नानक सचु धिआईऐ ॥
सुचि होवै ता सचु पाईऐ ॥२॥

शब्दार्थ : माणस खाणे—मनुष्यों को खाने वाले, रिश्वतख़ोर। करहि निवाज—नमाज़ पढ़ते हैं। छुरी वगाइनि—(जो लोग) छुरी चलाते हैं, भाव जुल्म करते हैं। ताग—जनेऊ। तिन घरि—उन (क्षत्रियों) के घरों में। पूरहि नाद—शंख बजाते हैं। उना भि—उन ब्रह्मणों को भी। आवहि ओई साद—वही स्वाद आते हैं। (भाव, जो कुछ वह क्षत्री खाते हैं, उन्हीं पदार्थों का स्वाद उन ब्रह्मणों को आता है)। करहि आहारु—आहार करते हैं, रोज़ी कमाते हैं। सरम—लज्जा, शर्म। कखाई—गेरुए रँग वाली। जगत कासाई—जगत का कसाई, जगत के प्रत्येक जीव पर जुल्म करने वाला। होवहि परवाणु—कबूल होते हैं, नौकरी के समय नीले वसत्र पहनकर जाते हैं, (तो ही हाकमों के सम्मुख जा सकते हैं)। ले—लेकर (भाव, रोज़ी उनसे लेते हैं जिन्हें मलेच्छ कहते हैं)। पूजहि पुराणु—पुराण को पूजते हैं, पढ़ते हैं। अभाखिआ—किसी दूसरी बोली का (भाव कलमा पढ़कर)। कुठा—हलाल किया हुआ। खाणा—खुराक। मतु भिटै—कहीं गन्दा न हो जाये। फिटै—खराब हो जाए। तनि फिटै—गन्दे शरीर के साथ। फेड़—बुरे काम। मनि जूठै—अशुद्ध मन द्वारा। सुचि—पवित्रता। होवै ता—तब होती है।२।

अर्थ : (काज़ी और मुसलमान शासक हैं तो) रिश्वतख़ोर परन्तु नमाज़ें पढ़ते हैं। (इन शासकों के आगे मुंशी वह क्षत्रीय हैं जो) छुरी चलाते हैं (भाव, ग़रीबों पर ज़ुल्म करते हैं) पर उनके गलों में जनेऊ हैं। इन (ज़ालिम क्षत्रियों) के घरों में ब्रह्मण जाकर शंख बजाते हैं, तो वह पदार्थ वे भी सेवन करते हैं (भाव, ब्रह्मण भी ज़ुल्म द्वारा कमाए पदार्थ खाते हैं)। (इन लोगों की) यह झूठी पूँजी है और झूठा ही इनका (यह) व्यापार है। झूठ बोलकर (ही) यह रोज़ी कमाते हैं। अब शर्म व धर्म की कोई बात नहीं रह गई। हे नानक! सब जगह झूठ ही प्रधान हो रहा है।

(यह क्षत्रीय) मस्तक पर तिलक लगाते हैं, कमर पर गेरुए रँग की धोती (बाँधते हैं), परन्तु हाथ में (मानो) छुरी पकड़ी हुई है और (अवसर मिलते ही प्रत्येक जीव पर जुल्म करते हैं। नीले रँग के वस्त्र पहनकर (तुर्क शास्कों के पास जाते हैं, तो ही) उनके नज़दीक जाने की अनुमति

मिलती है। (जिन्हें) मलेच्छ (कहते हैं उन्हीं से) रोज़ी लेते हैं, और (फिर भी) पुराण को पूजते हैं (भाव, फिर भी मानते हैं कि हम अपने धर्म-ग्रंथों का पालन कर रहे हैं)। (यही नहीं) मुसलमान हलाल माँस खाते हैं (परन्तु कहते हैं कि) हमारे चौके (रसोई घर) के ऊपर कोई दूसरा मनुष्य न आए। रसोई घर बनाकर उसके इर्द-गिर्द रेखा बना देते हैं (परन्तु इस) रसोई घर में वह मनुष्य आ बैठते हैं जो स्वयं झूठे हैं।

(दूसरों को कहते हैं—हमारे रसोई घर के नज़दीक न आना) कहीं चौका (रसोई घर) अस्वच्छ न हो जाए और हमारा अन्न ख़राब न हो जाए, (परन्तु स्वयं यह लोग) अपवित्र शरीर द्वारा बुरे काम करते हैं और जूठे मन द्वारा कुल्ला करते हैं।

हे नानक! कह, प्रभु की ओर ध्यान लगाना चाहिए। तो ही शुद्ध-पवित्रता हो सकती है, अगर सच्चा प्रभु प्राप्त हो जाए।२।

पउड़ी ॥

चितै अंदरि सभु को वेखि नदरी हेठि चलाइदा ॥
आपे दे वडिआईआ आपे ही करम कराइदा ॥
वडहु वडा वड मेदनी सिरे सिरि धंधै लाइदा ॥
नदरि उपठी जे करे सुलताना घाहु कराइदा ॥
दरि मंगनि भिख न पाइदा ॥१६॥

शब्दार्थ : चितै अंदरि—(प्रभु के) ध्यान में। सभु को—प्रत्येक जीव। वेखि—देखकर, भाव ध्यानपूर्वक। चलाइदा—चलाता है। वडहु वडा—बड़े से बड़ा। मेदनी—सृष्टि, धरती। वड मेदनी—उसकी सृष्टि बड़ी है। सिरे सिरि—प्रत्येक जीव के सिर पर। उपठी—उल्टी। घाहु कराइदा—कोई उनकी ओर देखता भी नहीं। दरि—(लोगों के) द्वार पर। मंगनि—(वह सुल्तान) माँगते हैं। भिख—भिक्षा।१६।

अर्थ : प्रभु प्रत्येक जीव को अपने ध्यान में रखता है और प्रत्येक

जीव को अपनी नज़र में रखकर व्यस्त रखता है। वह स्वयं (जीवों को) बड़ाई देता है और स्वयं ही उन्हें व्यस्त रखता है। प्रभु सब से बड़ा है, (उसकी बनाई हुई) सृष्टि भी बेअंत है। (इतनी बेअंत सृष्टि के बावजूद भी) प्रत्येक जीव को प्रभु अपने अपने धँधों से जोड़े रखता है। अगर कभी दुनिया के महाराजों पर भी क्रोध कर ले, तो उन्हें भी कहीं का नहीं छोड़ता, (अगर वह) लोगों के द्वार पर भीख माँगने जाते हैं तो कोई उन्हें कुछ नहीं देता।१६।

सलोकु मः १ ॥

जे मोहाका घरु मुहै घरु मुहि पितरी देइ ॥
अगै वसतु सिञाणीऐ पितरी चोर करेइ ॥
वढीअहि हथ दलाल के मुसफी एह करेइ ॥
नानक अगै सो मिलै जि खटे घाले देइ ॥१॥

शब्दार्थ : मोहाका—ठग, चोर। (जैसे संस्कृत शब्द 'कटक' का अन्तिम 'क' प्राकृत में 'अ' बनकर पँजाबी रूप में 'कड़ा' बन गया है, उसी तरह 'मोषक' से (ष) का 'ह' होकर 'मोहा' बन गया है। शब्द 'मोहाका' का अर्थ है 'नीच चोर')। घरु मुहै—(किसी का) घर ठगे। घरु मुहि—(पराया) घर ठग कर। पितर—बाप दादा आदि बड़े जो मर चुके हों। वसतु—वस्तु, चीज़। पितरी चोर करेइ—(इस तरह वह मनुष्य अपने) पित्तरों को चोर बनाता है। वढीअहि—काटे जाते हैं। हथ दलाल के—उस ब्रह्मण के हाथ जो लोगों के पित्तरों को पदार्थ पहुँचने के लिए दलाल (विचोलिया) बनता है। मुसफी एह करेइ—(प्रभु) यह न्याय करता है। खटे घाले देइ—(मनुष्य) कमाता है और हाथ से देता है।१।

अर्थ : अगर कोई चोर पराए घर से चोरी किए हुए (पदार्थ) अपने पित्तरों के नमित्त दे, तो (अगर माना जाए कि यहाँ दिया वहाँ पहुँचता है तो) परलोक में वह पदार्थ पहचाना जाता है। इस तरह वह मनुष्य अपने

पित्तरों को (भी) चोर बनाता है (क्योंकि उन से चोरी का माल निकल आता है)। (आगे) प्रभु यह न्याय करता है कि (यह चोरी का माल पहुँचाने वाले ब्रह्मण) दलाल के हाथ काटे जाते हैं। हे नानक! किसी का पहुँचाया हुआ आगे क्या मिलता है ? आगे तो मनुष्य को वही कुछ मिलता है, जो कमाता है और (अपने हाथ से दान) देता है।१।

म: १ ॥

जिउ जोरू सिरनावणी आवै वारो वार ॥
जूठे जूठा मुखि वसै नित नित होइ खुआरु ॥
सूचे एहि न आखीअहि बहनि जि पिंडा धोइ ॥
सूचे सेई नानका जिन मनि वसिआ सोइ ॥२॥

शब्दार्थ : जोरू—स्त्री। सिरनावणी—माहवारी खून। वारो वार—हर महीने, हमेशा। जूठे—झूठे मनुष्य के। जूठा—झूठा। एहि—ऐसे मनुष्य। सूचे—पवित्र। आखीअहि—कहे जाते हैं। जि—जो मनुष्य। सेई—वही मनुष्य। जिन मनि—जिनके मन में। सोइ—वह प्रभु।२।

अर्थ : जैसे स्त्री को हमेशा प्रत्येक महीने माहवारी आती है (और अपवित्रता उसके अन्दर से ही पैदा हो जाती है), उसी तरह झूठे मनुष्य के मुँह पर हमेशा झूठ होने से वह हमेशा दु:खी रहता है। ऐसे मनुष्य पवित्र नहीं कहे जा सकते जो सिर्फ शरीर को ही धोकर (अपनी ओर से पवित्र बनकर) बैठ जाते हैं। हे नानक! केवल वही मनुष्य पवित्र हैं, जिन के मन में प्रभु रहता है।२।

पउड़ी ॥

तुरे पलाणे पउण वेग हर रंगी हरम सवारिआ ॥
कोठे मंडप माड़ीआ लाइ बैठे करि पासारिआ ॥
चीज करनि मनि भावदे हरि बुझनि नाही हारिआ ॥

करि फुरमाइसि खाइआ वेखि महलति मरणु विसारिआ ।।
जरु आई जोबनि हारिआ ।।१७।।

शब्दार्थ : तुरे—घोड़े। पलाणे—काठियाँ (स्मेत)। वेग—तेज़ चाल। हर रंगी—प्रत्येक रँग के। हरम—महल। सवारिआ—सजाए हुए हों। मंडप—महल। लाइ.....पासारिआ—सजा कर बैठे हों। चीज—कौतक, तमाशे। मनि भावदे चीज—मन लुभावने कौतक, रँग-रलियाँ। हारिआ—(वह मनुष्य अपना जन्म) हार जाते हैं। फुरमाइसि—आज्ञा। जरु—बुढ़ापा। जोबनि हारिआ—यौवन के ठगे हुओं को।१७।

अर्थ : जिनके पास काठियों स्मेत (हमेशा त्यार-बर-त्यार) घोड़े तेज़ चाल चलने वाले होते हैं, जो अपने महलों को कई तरह से सजाते हैं, जो मनुष्य महलों में पसर कर (अहँकार से) बैठे हैं, जो मनुष्य मनमानी रँग-रलियाँ मनाते हैं, परन्तु प्रभु को नहीं पहचानते, वह अपना मनुष्य-जन्म हार बैठते हैं। जो मनुष्य (गरीबों पर) हुक्म चलाकर (पदार्थ) सेवन करते हैं (भाव, मौज लेते हैं) और अपने महलों को देखकर अपनी मृत्यु को भुला देते हैं, उन जवानी द्वारा ठगे जा चुके (भाव, यौवन के नशे में मस्त हुए मनुष्यों को) अज्ञानता में ही बुढ़ापा आ घेरता है।१७।

सलोकु मः १ ।।

जेकरि सूतकु मंनीऐ सभ तै सूतकु होइ ।।
गोहे अतै लकड़ी अंदरि कीड़ा होइ ।।
जेते दाणे अंन के जीआ बाझु न कोइ ।।
पहिला पाणी जीउ है जितु हरिआ सभु कोइ ।।
सूतकु किउकरि रखीऐ सूतकु पवै रसोइ ।।
नानक सूतकु एव न उतरै गिआनु उतारै धोइ ।।१।।

शब्दार्थ : सभ तै—सभी स्थानों पर। जीआ बाझु—जीवों के बिना।

पहिला पाणी—सबसे पहले पानी। जितु—जिस से। सभु कोइ—हर जीव। हरिआ—हरा, ज़िन्दा। एव—इस तरह। उतारै धोइ—धोकर उतार देता है।१।

अर्थ : यदि सूतक माना जाए (तो याद रखें) सूतक सब स्थानों पर होता है, गोबर व लकड़ी के अन्दर भी कीड़े होते हैं (भाव, पैदा होते रहते हैं), अन्न के सभी दानों में जीव हैं। पानी भी जीव है, क्योंकि इसी से सभी ज़िन्दा हैं। सूतक कैसे रखा जा सकता है ? (भाव, सूतक का भ्रम मानना बहुत कठिन है, क्योंकि इस प्रकार तो हर समय ही) रसोई में सूतक रहता है। हे नानक! इस तरह (भाव, भ्रमों में रहने से) सूतक (मन से) नहीं उतरता, इसे तो (प्रभु का) ज्ञान ही धोकर उतार सकता है।१।

म: १ ॥

मन का सूतकु लोभु है जिहवा सूतकु कूड़ु ॥
अखी सूतकु वेखणा पर त्रिअ पर धन रूपु ॥
कंनी सूतकु कंनि पै लाइतबारी खाहि ॥
नानक हंसा आदमी बधे जमपुरि जाहि ॥२॥

शब्दार्थ : कूड़ु—झूठ (बोलना)। पर त्रिअ रूपु—पराई स्त्री का रूप। कंनि—कान से। लाइतबारी—चुगली। पै खाहि—पड़े खाते हैं, बे-परवाह होकर (चुगली) सुनते हैं। हंसा आदमी—(देखने मात्र) हँस जैसे मनुष्य, बाहर से साफ सुथरे मनुष्य। जमपुरि—यमपुरी में, नरक में।२।

अर्थ : मन का सूतक लोभ है (भाव, जिन मुनष्यों के मन को लोभ-रूपी सूतक लगा है), ज़बान का सूतक झूठ बोलना है, आँख को पराए धन और पराई स्त्रियों का सौंदर्य देखने का सूतक (लगा है); (जिन के) कानों में बे-फिक्र होकर चुगली सुनने का सूतक है; हे नानक! (ऐसे) मनुष्य (देखने में चाहे) हँस जैसे (सुन्दर) हों, (तो भी वह) बाँधकर नरक में डाले जाते हैं।२।

मः १ ॥

सभो सूतकु भरमु है दूजै लगै जाइ ॥
जंमणु मरणा हुकमु है भाणै आवै जाइ ॥
खाणा पीणा पवित्रु है दितोनु रिजकु संबाहि ॥
नानक जिन्ी गुरमुखि बुझिआ तिन्ा सूतकु नाहि ॥३॥

शब्दार्थ : सभो—पूरा। दूजै—माया में। दूजै जाइ—माया में फँसकर। दितोनु—प्रभु ने जीवों को दिया है। संबाहि—एकत्र करके।३।

अर्थ : सूतक पूरी तरह से भ्रम ही है, यह (सूतक रूपी भ्रम) माया में फँसे (मनुष्यों को) आ लगता है। (वैसे तो) जीव का पैदा होना व मरना प्रभु के हाथ में है, प्रभु की मर्ज़ी से ही जीव पैदा होता व मरता है। (पदार्थों का) खाना पीना भी पवित्र है (भाव, बुरा नहीं, क्योंकि) प्रभु ने स्वयं एकत्र करके रिज़क जीवों को दिया है। हे नानक! जिन गुर-प्रेमियों ने यह बात समझ ली है, उन्हें सूतक नहीं लगता।३।

पउड़ी ॥

सतिगुरु वडा करि सालाहीऐ
जिसु विचि वडीआ वडिआईआ ॥
सहि मेले ता नदरी आईआ ॥
जा तिसु भाणा ता मनि वसाईआ ॥
करि हुकमु मसतकि हथु धरि
विचहु मारि कढीआ बुरिआईआ ॥
सहि तुठै नउ निधि पाईआ ॥१८॥

शब्दार्थ : वडा करि सालाहीऐ—महिमा करें कि गुरु बड़ा है। जिसु विचि—जिस गुरु में। वडीआ वडिआईआ—बड़े ऊँचे गुण। सहि—पति प्रभु ने। मेले—मिलाए हैं (गुरु के साथ जो मनुष्य)। नदरी आईआ—(उन

मनुष्यों को गुरु का बड़पन) दिखता है। मसतकि—(जीव के) माथे पर। विचहु—(जीव के मन) से। सहि तुठै—यदि पति (प्रभु) ख़ुश हो। नउ निधि—नौ ख़ज़ाने, संसार के सभी पदार्थ।

पुरातन संस्कृत ग्रंथों में 'कुबेर' के नौ ख़ज़ाने माने गए हैं, जो इस प्रकार हैं:

महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकर कच्छपौ ।।
मुकुन्दं कुन्दनीलाश्च खर्वश्चनिधयो नव ।।

यह 'कुबेर' धन का देवता और उत्तर दिशा का मालिक माना जाता है। यक्ष और किन्नर का राजा भी यही है। यह कैलाश पर्वत पर रहता है। इसका शरीर कुरूप है : तीन टाँगें, आठ दाँत और एक आँख के स्थान पर एक पीले रंग का निशान है। शब्द 'कुबेर' का अर्थ भी कुरूप है।

कुत्सितं बेरं शरीरं यस्य ।।

पाईआ—(ख़ज़ाने) मिल जाते हैं।१८।

अर्थ : सतिगुरु का गुणगान करना चाहिए और कहना चाहिए कि गुरु में बड़े बड़े गुण हैं। जिन मनुष्यों को प्रभु रूपी पति ने (गुरु के साथ) मिलाया है, उन्हें वह गुण प्रत्यक्ष दिखते हैं। और अगर प्रभु की इच्छा हो तो उनके मन में भी वह गुण बस जाते हैं। प्रभु अपनी आज्ञानुसार उन मनुष्यों के शीश पर हाथ रखकर उनके मन में से बुराईयाँ निकाल देता है। अगर पति-प्रभु प्रसन्न हो जाए, तो मानो सभी पदार्थ मिल जाते हैं।१८।

सलोकु मः १ ।।

पहिला सुचा आपि होइ सुचै बैठा आइ ।।
सुचे अगै रखिओनु कोइ न भिटिओ जाइ ।।
सुचा होइ कै जेविआ लगा पड़णि सलोकु ।।
कुहथी जाई सटिआ किसु एहु लगा दोखु ।।

अंनु देवता पाणी देवता बैसंतरु देवता लूणु ॥
पंजवा पाइआ घिरतु ॥
ता होआ पाकु पवितु ॥
पापी सिउ तनु गडिआ थुका पईआ तितु ॥
जितु मुखि नामु न ऊचरहि बिनु नावै रस खाहि ॥
नानक एवै जाणीऐ तितु मुखि थुका पाहि ॥१॥

शब्दार्थ : सुचै—साफ, पवित्र पाकशाला में। कोइ....जाइ—(जिस भोजन को) किसी मनुष्य ने अभी छुआ नहीं। सुचे अगै रखिओनु—(वह भोजन) इस (नहा धोकर आए मनुष्य) के आगे (किसी ने) रख दिया। जेविआ—खाया। लगा पड़णि—पढ़ने लगता है। कुहथी जाई—गन्दी जगह पर। पाकु—पवित्र। तनु—(उन देवताओं का) शरीर। गडिया—मिलाया। तितु—उस के ऊपर। जितु मुखि—जिस मुँह से। रस खाहि—स्वादिष्ट पदार्थ खाते हैं। एवै—इसी तरह (जैसे ऊपर लिखे पवित्र पदार्थों पर गन्दगी पड़ती है) ।१।

नोट : भूतकाल का अर्थ वर्तमान काल में करना है।

अर्थ : सबसे पहले (ब्रह्मण नहा धोकर) साफ होकर, पवित्र पाकशाला में आकर बैठता है, उसके आगे (यजमान) वह भोजन ला कर रखता है जिसे अभी किसी ने जूठा नहीं किया था। (ब्रह्मण) शुद्ध होकर उस (पवित्र) भोजन का सेवन करता है और (खाकर) मंत्र पढ़ने लगता है, (परन्तु इस पवित्र भोजन को) गन्दी जगह (भाव, पेट में) डाल लेता है। (उस पवित्र भोजन को) (गन्दी जगह पर फेंकने का) दोष किस पर आया ? अन्न, पानी, अग्नि और नमक—चारों ही देवता हैं (भाव, पवित्र पदार्थ हैं), पाँचवां घी भी पवित्र है, जो इन चारों में प्रयोग करते हैं। तो (इन पांचों को मिलाने से) पवित्र भोजन त्यार होता है। परन्तु देवताओं के इस शरीर को (भाव, इस पवित्र भोजन को) पापी (मनुष्य) से सँगति

होती है, जिस कारण उसके ऊपर थूक पड़ती है)। हे नानक! इसी तरह समझना चाहिए कि जिस मुख से मनुष्य नाम नहीं लेते, और स्वादिष्ट पदार्थ सेवन करते हैं, उन्हें अपमानित होना पड़ता है।१।

म: १ ॥

भंडि जंमीऐ भंडि निंमीऐ भंडि मंगणु वीआहु ॥
भंडहु होवै दोसती भंडहु चलै राहु ॥
भंडु मुआ भंडु भालीऐ भंडि होवै बंधानु ॥
सो किउ मंदा आखीऐ जितु जंमहि राजान ॥
भंडहु ही भंडु उपजै भंडै बाझु न कोइ ॥
नानक भंडै बाहरा एको सचा सोइ ॥
जितु मुखि सदा सालाहीऐ भागा रती चारि ॥
नानक ते मुख उजले तितु सचै दरबारि ॥२॥

शब्दार्थ : भंडु—स्त्री। भंडि—स्त्री से। जंमीऐ—पैदा होते हैं। निंमीऐ— प्राणी का शरीर बनता है। मंगणु—कुड़माई, मंगनी। भंडहु—स्त्री द्वारा। राहु—जगत की उत्पत्ति का रास्ता। भालीऐ—ढूँढते हैं और स्त्री की खोज की जाती है। बंधानु—रिश्तेदारी। जितु—जिस स्त्री से। भंडहु ही भंडु—स्त्री से स्त्री। सालाहीऐ—प्रभु का यश गान करें। भागा रती चारि—अच्छे भाग्य के कारण वह मुख सुन्दर लगता है।२।

अर्थ : स्त्री से जन्म लिया जाता है, स्त्री (के पेट) में ही प्राणी का शरीर बनता है। स्त्री के साथ ही सगाई और विवाह होता है। स्त्री द्वारा (दूसरों से) रिश्ता बनता है, और स्त्री द्वारा ही (जगत की उत्पत्ति का) मार्ग चलता है। अगर स्त्री मर जाए तो और स्त्री की तलाश की जाती है। स्त्री द्वारा ही (औरों से) रिश्तेदारी बनती है। इसी स्त्री (जाति) से राजा (भी) पैदा होते हैं, उसे बुरा कहना ठीक नहीं है। स्त्री से ही स्त्री पैदा होती है, (जगत् में) कोई भी स्त्री के बिना पैदा नहीं हो सकता।

हे नानक! केवल एक सच्चा प्रभु ही स्त्री के बिना पैदा हुआ है। (चाहे मनुष्य हो या स्त्री, जो भी) अपने मुँह से हमेशा प्रभु के गुण गाता है, उसका माथा भाग्य वाला है, भाव, वह भाग्यशाली है। हे नानक! वही चेहरे प्रभु के दरबार में शोभा देते हैं।

[नोट : शब्द 'भंड' व्याकरण के अनुसार पुल्लिंग है। देखें, *गुरबाणी व्याकरण]*

पउड़ी ॥

सभु को आखै आपणा जिसु नाही सो चुणि कढीऐ ॥
कीता आपो आपणा आपे ही लेखा संढीऐ ॥
जा रहणा नाही ऐतु जगि ता काइतु गारबि हंढीऐ ॥
मंदा किसै न आखीऐ पड़ि अखरु एहो बुझीऐ ॥
मूरखै नालि न लुझीऐ ॥१९॥

शब्दार्थ : आखै आपणा—(हर कोई) कहता है, 'यह मेरी वस्तु है', भाव हर किसी जीव को ममता है। जिसु नाही—जिसे ममता नहीं है। संढीऐ—भरा जाता है। ऐतु जगि—इस जगत में। काइतु—क्यों ? गारबि—अहँकार में। हंडीऐ—परेशान होना। लुझीऐ—झगड़ा करना।१९।

अर्थ : जगत में हर जीव को ममता है, जिसे ममता नहीं उसे अलग कर के दिखाएं, (भाव, ऐसा कोई कम ही है जिसे ममता न हो)। अपने अपने कर्मों का हिसाब स्वयं देना पड़ता है। जब इस जगत में रहना स्थिर ही नहीं है, तब क्यों अहँकार करके परेशान हुआ जाए ? केवल यह अक्षर (उपदेश) पढ़कर समझ लेना चाहिए कि किसी को बुरा नहीं कहना चाहिए और मूर्ख व्यक्ति से झगड़ा नहीं करना चाहिए।१९।

सलोकु मः १ ॥

नानक फिकै बोलिऐ तनु मनु फिका होइ ॥
फिको फिका सदीऐ फिके फिकी सोइ ॥

फिका दरगह सटीऐ मुहि थुका फिके पाइ ॥
फिका मूरखु आखीऐ पाणा लहै सजाइ ॥१॥

शब्दार्थ : फिकै बोलिऐ—यदि कड़वा वचन बोलें। फिका—फीका। फिको फिका सदीऐ—रूखा बोलने वाले मनुष्य को रूखा ही कहा जाता है, भाव, जो मनुष्य रूखा बचन बोले, उसके बारे में कहा जाता है कि वह मनुष्य रूखा है। फिके—रूखा बोलने वाले मनुष्य की। सोइ—शोभा, लोगों की राये। पाणा—जूते।१।

अर्थ : हे नानक! अगर मनुष्य रूखे बोल बोलता रहे, तो उसका तन और मन दोनों रूखे हो जाते हैं (भाव, मनुष्य के भीतर से प्रेम समाप्त हो जाता है)। रूखा बोलने वाला लोगों में रूखा ही जाना जाता है और लोग भी उसे रूखे बोलों द्वारा ही याद करते हैं। रूखा (प्रेम-विहीन) मनुष्य (प्रभु की) दरगाह से बाहर कर दिया जाता है और उसके मुँह पर थूक पड़ती है (भाव कि उसे फिटकार पड़ती है)। (प्रेम-विहीन) रूखे मनुष्य को मूर्ख कहना चाहिए, प्रेम से ख़ाली मनुष्य को जूतों की मार पड़ती है (भाव, हर जगह उसका अपमान होता है)।१।

मः १ ॥

अंदरहु झूठे पैज बाहरि दुनीआ अंदरि फैलु ॥
अठसठि तीरथ जे नावहि उतरै नाही मैलु ॥
जिन्ह पटु अंदरि बाहरि गुदड़ु ते भले संसारि ॥
तिन्ह नेहु लगा रब सेती देखंने वीचारि ॥
रंगि हसहि रंगि रोवहि चुप भी करि जाहि ॥
परवाह नाही किसै केरी बाझु सचे नाह ॥
दरि वाट उपरि खरचु मंगा जबै देइ त खाहि ॥
दीबानु एको कलम एका हमा तुम्हा मेलु ॥
दरि लए लेखा पीड़ि छुटै नानका जिउ तेलु ॥२॥

शब्दार्थ : पैज—झूठी इज़्ज़त। फैलु—दिखावा। ते—वह मनुष्य। सेती—साथ। देखने वीचारि—प्रभु को देखने के ध्यान में (लगे रहते हैं)। किसै केरी—किसी की। नाह—मालिक (देखें श्लोक ३, पउड़ी १)। वाट उपरि—रास्ते में, ज़िन्दगी रूपी रास्ते पर चल रहे। खरचु मंगा—(नाम रूपी) खाना ही माँगते हैं। देइ—(प्रभु) देता है। दीबानु—अदालत। कलम—भाव, लेखा अधिकारी (हरी स्वयं ही फैसला करने वाला है और स्वयं ही जीवों का लेखा भी लिखता है)। हमा तुमा मेलु—सारे अच्छे बुरे जीवों का मेला (प्रभु के द्वार पर होगा)। जिउ तेलु—जैसे तेल निकालते हैं।२।

अर्थ : जो मनुष्य मन से तो झूठे हैं, परन्तु बाहरी तौर से झूठी इज़्ज़त बनाकर बैठे हैं और जगत् में दिखावा करते हैं, वह चाहे अठसठ तीर्थों पर (जाकर) स्नान करें, उनके मन से छल कपट की मैल कभी नहीं उतरती।

जिन मनुष्यों के भीतर (कोमलता व प्रेम रूपी) रेशम है, पर बाहर (रूखापन रूपी) फटे कपड़े हैं, जगत में वह बन्दे नेक हैं, उनका प्रभु से प्रेम है और वह प्रभु के दर्शन करने के विचार में ही (लीन हैं)। वे मनुष्य प्रभु-प्रेम में (रँगे हुए कभी) हँसते हैं, (कभी) रोते हैं और प्रेम में ही (कभी) चुप ही रहते हैं (भाव, प्रेम में ही मस्त रहते हैं); उन्हें सच्चे प्रभु के बिना और किसी की ज़रूरत नहीं होती। ज़िन्दगी रूपी रास्ते पर चलते वे मनुष्य प्रभु के द्वार से नाम रूपी भोजन माँगते हैं, जब प्रभु देता है तभी खाते हैं। हे नानक! (उन्हें भरोसा है कि) प्रभु स्वयं ही फैसला करने वाला है और स्वयं ही लेखा लिखने वाला है, सभी अच्छे बुरे जीवों का एक मेला सा उसके द्वार पर लगा रहता है, प्रभु सबसे (किये कर्मों का) लेखा माँगता है और बुरे मनुष्यों को ऐसे निचोड़ता है जैसे तेल (भाव, उनके बुरे संस्कारों को भीतर से निकालने के लिए उन्हें दुःख रूपी कोल्हू में डालकर पीसता है)।२।

पउड़ी ॥

आपे ही करणा कीओ कल आपे ही तै धारीऐ ॥
देखहि कीता आपणा धरि कची पकी सारीऐ ॥
जो आइआ सो चलसी सभु कोई आई वारीऐ ॥
जिस के जीअ पराण हहि किउ साहिबु मनहु विसारीऐ ॥
आपण हथी आपणा आपे ही काजु सवारीऐ ॥२०॥

शब्दार्थ : करणा—शरीर, किया हुआ आकार, सृष्टि। तै—(हे प्रभु!) तुमने। धरि—रख कर (जगत में), रच कर। सारी—मोहरा, जीव रूपी मोहरा। कची पकी सारीऐ—अच्छे बुरे जीवों को। जिस के—जिस प्रभु के।२०।

अर्थ : (हे प्रभु!) तुमने स्वयं ही सृष्टि रची है और तुमने स्वयं ही इस में (जीव रूपी) शक्ति डाली है। अच्छे बुरे जीवों को पैदा कर के, अपने पैदा किए हुए जीवों की तुम स्वयं ही प्रतिपालना कर रहे हो।

(हे भाई!) जिस प्रभु के दिए हुए यह जान और प्राण हैं, उस मालक को मन से कभी भुलाना नहीं चाहिए, (जब तक जान व प्राण है, परिश्रम द्वारा) अपने हाथों से अपना काम स्वयं ही ठीक करना चाहिए (भाव, यह मनुष्य जन्म हरि के सुमिरन द्वारा सफल करना चाहिए)।२०।

सलोकु महला २ ॥

एह किनेही आसकी दूजै लगै जाइ ॥
नानक आसकु कांढीऐ सद ही रहै समाइ ॥
चंगै चंगा करि मंने मंदै मंदा होइ ॥
आसकु एहु न आखीऐ जि लेखै वरतै सोइ ॥१॥

शब्दार्थ : दूजै—(अपने प्रिय को छोड़कर) किसी और में। कांढीऐ—कहा जाता है। रहै समाइ—समाया रहे, मस्त रहे, (अपने प्रिय

की याद में) डूबा रहे। चंगै—अच्छे (काम) को, (अपने प्यारे की ओर से हुए किसी) अच्छे काम को। मंदै मंदा होइ—(अपने सज्जन की ओर से हुए किसी) बुरे (काम) को (देखकर) कहे कि यह (बुरा काम) हुआ है। जि सोइ—अगर वह मनुष्य, जो मनुष्य।१।

अर्थ : (अगर कोई प्रेमी अपने प्यारे के बिना) किसी और में (भी) चित्त लगा ले, तो उसके प्यार को सच्चा प्यार नहीं कहा जा सकता। हे नानक! वही मनुष्य सच्चा प्रेमी कहला सकता है जो हर समय (अपने ही प्रिय की याद में) डूबा रहे।

(अपने प्यारे की ओर से हुए किसी) अच्छे (काम) को देखकर कहे कि यह अच्छा काम है, परन्तु बुरे काम को देखकर कहे कि यह बुरा काम है (भाव, अपने प्यारे की ओर से आये किसी सुख को तो हँस कर कबूल करे, परन्तु दुःख को देखकर घबरा जाए) वह मनुष्य भी, हे नानक! सच्चा प्रेमी नहीं कहला सकता, क्योंकि वह हिसाब देखकर प्यार करता है।१।

महला २ ॥

सलामु जबाबु दोवै करे मुंढहु घुथा जाहि ॥
नानक दोवै कूड़ीआ थाइ न काई पाइ ॥२॥

शब्दार्थ : सलामु—नम्रता, सर झुकाना। जबाबु—ऐतराज़, इन्कार। मुंढहु—बिल्कुल ही। दोवै—दोनो बातें, भाव, कभी सर झुकाना और कभी आगे बोलना।२।

अर्थ : (जो मनुष्य अपने मालिक प्रभु की आज्ञा के सम्मुख कभी तो) सर झुका दे और कभी (उसकी आज्ञा पर) ऐतराज़ करे, वह (मालिक की ख़ुशी के रास्ते पर चलने से) बिल्कुल दूर है। हे नानक! सर झुकाना और इन्कार करना—दोनों ही झूठ हैं, इन दो में से कोई बात भी (मालिक के द्वार पर) स्वीकार नहीं होती।२।

पउड़ी ॥

जितु सेविऐ सुखु पाईऐ सो साहिबु सदा सम्ालीऐ ॥
जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ ॥
मंदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरि निहालीऐ ॥
जिउ साहिब नालि न हारीऐ तेवेहा पासा ढालीऐ ॥
किछु लाहे उपरि घालीऐ ॥२१॥

शब्दार्थ : सम्ालीऐ—सम्भालना चाहिए, याद रखना चाहिए। जितु—जिस (काम के करने) से। सा घाल—वह परिश्रम। मूलि न कीचई—बिलकुल ही नहीं करना चाहिए। निहालीऐ—देखना चाहिए। जिउ— जैसे, जिस ढंग से। न हारीऐ—न टूटना। तेवेहा—वैसा। पासा ढालीऐ—चाल चलनी चाहिए, परिश्रम करना चाहिए। घालीऐ—मेहनत करनी चाहिए, कमाई करनी चाहिए।२१।

अर्थ : जिस मालिक का स्मरण करने से सुख मिलता है उस मालिक को हमेशा याद रखना चाहिए। जब मनुष्य ने अपने कर्मों का फल स्वयं भोगना है तो फिर बुरे काम नहीं करने चाहिएं (जिसका बुरा फल मिले)। बुरा काम भूल कर भी न करें, गहरी (विचार वाली) दृष्टि डालकर देखें (कि इस बुरे काम का परिणाम क्या होगा)। कोई ऐसा परिश्रम करना चाहिए, जिस द्वारा (प्रभु) मालिक से (प्रीति) न टूटे। (मनुष्य जन्म ले कर) कोई लाभ वाली कमाई करनी चाहिए।२१।

सलोकु महला २ ॥

चाकरु लगै चाकरी नाले गारबु वादु ॥
गला करे घणेरीआ खसम न पाए सादु ॥
आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु ॥
नानक जिस नो लगा तिसु मिलै लगा सो परवानु ॥१॥

शब्दार्थ : नाले—नौकरी के साथ, भाव नौकरी भी करे और साथ साथ। गारबु—(शब्द 'गरबु' का विशेषण है) अहँकार वाला, अहँकार से भरपूर। वादु—झगड़ा। सादु—प्रसन्नता, ख़ुशी। आपु—स्वयं को, अहं, अहँकार। ता—तब। जिस नो लगा—जिस मालिक की सेवा करता है। तिसु—उस मालिक को। लगा सो—वह (मनुष्य) लगा हुआ है, मालिक की सेवा करता वह मनुष्य।१।

अर्थ : अगर कोई नौकर अपने मालिक की नौकरी भी करे, और साथ साथ अपने मालिक के आगे अकड़ भी न छोड़े और अहँकार भरे बोल मालिक से बोले, तो वह नौकर मालिक की ख़ुशी प्राप्त नहीं कर सकता।

मनुष्य अपना आप मिटाकर (मालिक की) सेवा करे तब ही उसे कुछ आदर मिलता है। तो ही, हे नानक! वह मनुष्य अपने उस मालिक को मिल पाता है, जिसकी सेवा में लगा हुआ है। (स्वयं को सेवा में लीन करके) लगा हुआ मनुष्य ही (मालिक के द्वार पर) कबूल होता है।१।

महला २ ॥

जो जीइ होइ सु उगवै मुह का कहिआ वाउ ॥
बीजे बिखु मंगै अंम्रितु वेखहु एहु निआउ ॥२॥

शब्दार्थ : जीइ—मन में। मुह का कहिआ—मुँह का कहा हुआ, ज़बानी कहा हुआ। वाउ—हवा, पवन, भाव; पवन जैसा बेगाना। वेखहु एहु निआउ—इस न्याय को देखें, यह कौन-सी इन्साफ की बात है ? यह आश्चर्य की बात है।२।

अर्थ : जो कुछ मनुष्य के मन में होता है, वही प्रक्ट होता है (भाव, जैसी मनुष्य की नीयत होती है, वैसा उसे फल लगता है), (अगर मन में कुछ और हो, तो उसके उलट) मुँह से कहना व्यर्थ है। यह कैसी आश्चर्यजनक बात है कि मनुष्य बोता तो ज़हर है (भाव, नीयत तो विकारों

की ओर है) (परन्तु उसके फल के तौर पर) माँगता अमृत है।२।

महला २ ॥

नालि इआणे दोसती कदे न आवै रासि ॥
जेहा जाणै तेहो वरतै वेखहु को निरजासि ॥
वसतू अंदरि वसतु समावै दूजी होवै पासि ॥
साहिब सेती हुकम न चलै कही बणै अरदासि ॥
कूड़ि कमाणै कूड़ो होवै नानक सिफति विगासि ॥३॥

शब्दार्थ : जेहा जाणै—जैसी उस न-समझ की समझ होती है। तेहो वरतै—वैसा वह काम करता है। को—कोई मनुष्य। निरजासि—निर्णय कर के, परख कर के। समावै—समा सकता है। पासि—अलग, दूसरी ओर। साहिब सेती—मालिक के साथ। बणै—जँचती है। कूड़ि कमाणै—छल, धोखा, ठग्गी की कमाई करने से। विगासि—अन्दर खिल उठता है।३।

अर्थ : कोई भी मनुष्य परख कर देख ले, किसी न-समझ से दोस्ती नहीं चलती, क्योंकि उस न-समझ का बर्ताव वैसा ही रहता है जैसी उसकी समझ होती है, (इसी तरह इस मूर्ख मन के कहने में चलने से कभी लाभ नहीं होता, यह मन अपनी समझ के अनुसार विकारों की ओर ले जाता है)।

किसी एक चीज़ में कोई चीज़ तब ही डाली जा सकती है, अगर उस में से पहले पड़ी हुई चीज़ निकाल ली जाए, (इसी तरह इस मन को प्रभु के साथ जोड़ने के लिए यह ज़रूरी है कि इसका पहला स्वभाव बदला जाए।

मालिक के साथ हुक्म नहीं चलता, उसके आगे तो नम्रता ही जँचती है।

हे नानक! धोखे का काम करने से धोखा ही होता है, (भाव, जब तक मनुष्य दुनिया के धन्धों में व्यस्त रहता है, तब तक चिन्ता में ही फँसा रहता है, मन) प्रभु के यशगान से ही ख़ुशी से खिलता है।३।

महलु २ ॥

नालि इआणे दोसती वडारू सिउ नेहु ॥
पाणी अंदरि लीक जिउ तिस दा थाउ न थेहु ॥४॥

शब्दार्थ : वडारू—बड़ा मनुष्य, अपने से बड़ा मनुष्य।४।

अर्थ : न-समझ से मित्रता, या अपने से बड़े से प्यार—यह ऐसे हैं जैसे पानी में लकीर है, उस लकीर का कोई निशान नहीं रहता।४।

महलु २ ॥

होइ इआणा करे कंमु आणि न सकै रासि ॥
जे इक अध चंगी करे दूजी भी वेरासि ॥५॥

शब्दार्थ : इक अध—थोड़ा-बहुत, कोई एक काम। वेरासि—उलट-पुलट, ख़राब।५।

अर्थ : अगर कोई न-समझ व्यक्ति हो और वह कोई काम करे, वह काम को सम्पूर्ण नहीं कर सकता; अगर कहीं वह कोई थोड़ा-बहुत एक आध काम कर भी ले, तो भी दूसरे काम का नुक्सान कर देगा।५।

पउड़ी ॥

चाकरु लगै चाकरी जे चलै खसमै भाइ ॥
हुरमति तिस नो अगली ओहु वजहु भि दूणा खाइ ॥
खसमै करे बराबरी फिरि गैरति अंदरि पाइ ॥
वजहु गवाए अगला मुहे मुहि पाणा खाइ ॥
जिस दा दिता खावणा तिसु कहीऐ साबासि ॥
नानक हुकमु न चलई नालि खसम चलै अरदासि ॥२२॥

शब्दार्थ : खसमै भाइ—अपने मालिक की मर्ज़ी के अनुसार। हुरमति—इज़्ज़त। अगली—ज़्यादा। वजहु—तनख़्वाह, रोज़ीना।

गैरति—शरमिंदगी। अगला—पहला, जो पहले मिलता था। मुहे मुहि—मुँह पर, भाव, सदा अपने मुँह पर। पाणा—जूते।२२।

अर्थ : अगर नौकर अपने मालिक की मर्ज़ी अनुसार चले (तो जानो कि) वह मालिक की नौकरी कर रहा है। उसे एक तो बहुत इज़्ज़त मिलती है, दूसरे तनख़्वाह भी मालिक से दुगुनी लेता है।

परन्तु जो सेवक अपने मालिक की बराबरी करता है (भाव, मालिक के बराबर होने का प्रयत्न करता है), वह मन में लज्जा ही उठाता है, अपनी पहली तनख़्वाह भी गँवा बैठता है और सदा मुँह पर जूते खाता है।

हे नानक! जिस मालिक का दिया हुआ खाते हैं, उसकी सदा महिमा करनी चाहिए, मालिक के ऊपर आदेश नहीं किया जा सकता, उसके आगे तो विनती ही करनी योग्य है।२२।

सलोकु महला २ ॥

एह किनेही दाति आपस ते जो पाईऐ ॥
नानक सा करमाति साहिब तुठै जो मिलै ॥१॥

शब्दार्थ : दाति—आशीर्वाद। आपस ते—स्वयं से, अपनी मेहनत से। करमाति—(फ़ारसी: करामत) दात।१।

[***नोट :*** यह शब्द 'करामति' से नहीं है, शब्द 'दाति' के साथ दया अर्थ वाला शब्द ही ठीक है।]

अर्थ : अगर कहें कि मैंने अपनी मेहनत से यह चीज़ प्राप्त की है, तो यह (मालिक की तरफ से) दया नहीं कहला सकती। हे नानक! दया वही है जो मालिक की कृपा से मिले।१।

महला २ ॥

एह किनेही चाकरी जितु भउ खसम न जाइ ॥
नानक सेवकु काढीऐ जि सेती खसम समाइ ॥२॥

शब्दार्थ : जितु—जिस द्वारा, जिसकी सेवा करने से। काढीऐ—कहा जाता है। जि—जो सेवक। समाइ—लीन हो जाए, एक रूप हो जाए।२।

अर्थ : जिस सेवा के करने से (सेवक के दिल में से) अपने मालिक का डर दूर न हो, वह सेवा वास्तविक सेवा नहीं। हे नानक! सच्चा सेवक वही कहलाता है जो अपने मालिक के साथ एक रूप हो जाता है।२।

पउड़ी ॥

नानक अंत न जापनी् हरि ता के पारावार ॥
आपि कराए साखती फिरि आपि कराए मार ॥
इकना् गली जंजीरीआ इकि तुरी चड़हि बिसीआर ॥
आपि कराए करे आपि हउ कै सिउ करी पुकार ॥
नानक करणा जिनि कीआ फिरि तिस ही करणी सार ॥२३॥

शब्दार्थ : हरि ता के—उस हरि के। साखती—बनावट, पैदावार। इकि—कई जीव। तुरी—घोड़ों पर। बिसीआर—बहुत सारे। हउ—मैं। कै सिउ—किस के आगे। करणा—सृष्टि। जिनि—जिस (प्रभु) ने।२३।

अर्थ : हे नानक! उस प्रभु की महिमा बेअंत है। वह स्वयं ही जीवों को पैदा करता है और स्वयं ही उनको मार देता है। कई जीवों के गले में ज़ँजीर पड़ी हुई है (भाव, कई कैद, ग़ुलामी आदि के क़ष्ट सह रहे हैं और) अनगिनत जीव घोड़ों पर चढ़ रहे हैं (भाव, माया का आनन्द ले रहे हैं)। (यह सभी खेल-तमाशा) वह प्रभु स्वयं ही कर-करा रहा है, (उस के बिना और कोई दूसरा नहीं है) मैं किसके आगे (इसकी) पुकार कर सकता हूँ? हे नानक! जिस ईश्वर ने सृष्टि रची है, फिर वही उसकी संभाल कर रहा है।२३।

सलोकु मः १ ॥

आपे भांडे साजिअनु आपे पूरणु देइ ॥
इकन्ही दुधु समाईऐ इकि चुल्है रहन्हि चड़े ॥
इकि निहाली पै सवन्हि इकि उपरि रहनि खड़े ॥
तिन्हा सवारे नानका जिन्ह कउ नदरि करे ॥१॥

शब्दार्थ : पूरणु देइ—भर देता है, पूर्णता (उन बर्तनों में) देता है। इकन्ही—कई बर्तनों में। समाईऐ—पड़ा रहता है। निहाली—बिछौना। पै सवन्हि—ओढ़ कर सोते हैं, बेफिकर होकर सोते हैं। उपरि—(उनकी) सेवा के लिए, रक्षा के लिए। नदरि—कृपा।१।

अर्थ : प्रभु ने (जीवों के शरीर रूपी) बर्तन स्वयं बनाए हैं, और वह जो कुछ इन में डालता है (भाव, जो दुख सुख इनकी किस्मत में देता है, स्वयं ही देता है)। कई बर्तनों में दूध भरा रहता है और कई बेचारे चूल्हे पर ही जलते रहते हैं (भाव, कई जीवों के भाग्य में सुख और सुन्दर पदार्थ हैं और कई जीव हमेशा कष्ट ही भोगते हैं)। कई (भाग्यवान) बिछौनों (गद्दों) पर बेफिकर होकर सोते हैं, कई बेचारे (उनकी रक्षा आदि की सेवा के लिए) उनके पास खड़े रहते हैं। पर, हे नानक! जिन पर वह प्रभु कृपा दृष्टि करता है, उन को बनाता-संवारता है (भाव, उनका जीवन सुधार देता है)।१।

महला २ ॥

आपे साजे करे आपि जाई भि रखै आपि ॥
तिसु विचि जंत उपाइ कै देखै थापि उथापि ॥
किस नो कहीऐ नानका सभु किछु आपे आपि ॥२॥

शब्दार्थ : जाई—पैदा की हुई सृष्टि को। थापि—टिका कर, रख के। उथापि—नाश कर के। सभु किछु—भाव, सब कुछ करने को समर्थ।२।

अर्थ : प्रभु स्वयं ही सृष्टि को पैदा करता है, स्वयं ही इसे सजाता है, सृष्टि की देख-भाल भी स्वयं ही करता है, इस सृष्टि में जीवों को पैदा करके देखता है, स्वंय ही रखकर और स्वयं ही उनको नष्ट करता है।

हे नानक! (उसके बिना) किसी और के आगे प्रार्थना नहीं हो सकती, वह आप ही सब कुछ करने में समर्थ है।२।

पउड़ी ॥

वडे कीआ वडिआईआ किछु कहणा कहणु न जाइ ॥
सो करता कादर करीमु दे जीआ रिजकु संबाहि ॥
साई कार कमावणी धुरि छोडी तिंनै पाइ ॥
नानक एकी बाहरी होर दूजी नाही जाइ ॥
सो करे जि तिसै रजाइ ॥२४॥१॥

शब्दार्थ : वडिआईआ—गुण, महिमा। करीमु—कृपालु। दे—देता है। संबाहि—(To carry or bear along, cause to collect, to assemble, एकत्र करना) इकट्ठा कर के। दे संबाहि—पहुँचा देता है। तिंनै—उस ने स्वयं ही, प्रभु ने स्वयं ही। एकी बाहरी—एक जगह के बिना, प्रभु की एक जगह के बिना। जाइ—जगह। रजाइ—मर्ज़ी।२४।१।

अर्थ : प्रभु के गुणों के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता (भाव, गुणों का वर्णन सम्भव नहीं)। वह स्वयं ही कर्ता है, स्वयं ही कुदरत का स्वामि है, स्वयं ही कृपालु है और स्वयं ही जीवों को रोज़ी-रोटी देता है। सभी जीव वही कुछ करते हैं जो उस प्रभु ने स्वयं ही (उनके भाग्य में) रख छोड़ा है।

हे नानक! एक प्रभु के आश्रय के बिना और कोई जगह नहीं। जो कुछ उसकी मर्ज़ी है, वही करता है।२४।१।

आसा महला ४ छंत घरु ४ ॥

हरि अंम्रित भिंने लोइणा मनु प्रेमि रतंना राम राजे ॥
मनु रामि कसवटी लाइआ कंचनु सोविंना ॥
गुरमुखि रंगि चलूलिआ मेरा मनु तनो भिंना ॥
जनु नानकु मुसकि झकोलिआ सभु जनमु धनु धंना ॥१॥

शब्दार्थ : भिंने—भीगे हुये हैं, तर हो गये हैं, मस्ती में आ गये हैं। लोइणा—आँखें। प्रेमि—प्रेम-रंग में। रतंना—रंगा हुआ। रामि—राम ने। कंचनु—सोना। सोविंना—सुन्दर रंग वाला। गुरमुखि—गुरु की शरण में आने से। चलूलिआ—तेज़ लाल रंग से रंगा हुआ है। तनो—तन, शरीर, हृदय। मुसकि—कस्तूरी से। झकोलिया—अच्छी तरह सुगन्धित हो गया है। धनु धंना—भाग्यशाली, सफल।१।

अर्थ : हे भाई! मेरी आँखें आत्मिक जीवन देने वाले हरि-नाम-जल से मस्ती में आ गई हैं। मेरा मन प्रभु के प्रेम रंग मे रंगा गया है। परमात्मा ने मेरे मन को (अपने नाम की) कसौटी पर घिसा है और यह शुद्ध सोना बन गया है। गुरु की शरण में आने से मेरा मन प्रभु के प्रेम रंग में रंगा गया है, मेरा मन तर-बतर हो गया है, मेरा हृदय तर-बतर हो गया है। (गुरु की कृपा से) दास नानक (प्रभु के नाम की) कस्तूरी के साथ अच्छी तरह सुगन्धित हो गया है, (दास नानक का) सारा जीवन ही भाग्यशाली बन गया है।१।

हरि प्रेम बाणी मनु मारिआ अणीआले अणीआ राम राजे ॥
जिसु लागी पीर पिरंम की सो जाणै जरीआ ॥

जीवन मुकति सो आखीऐ मरि जीवै मरीआ ॥
जन नानक सतिगुरु मेलि हरि जगु दुतरु तरीआ ॥२॥

शब्दार्थ : अणीआले—अणी वाले, तीखी नोक वाले (तीर)। पीर—पीड़ा, दर्द। पिरंम—प्रेम। जरीआ—सही जाती है। जीवन मुकति—दुनिया के कारोबार करते हुये भी माया के बन्धनों से मुक्त। मरि—मर कर, माया से मुक्त होकर। दुतरु—जिस को पार करना मुश्किल हो।२।

अर्थ : प्रभु चर्णों में प्रेम पैदा करने वाली गुरबाणी ने मेरा मन बींध दिया है, जैसे तीखी नोक वाले तीर (किसी वस्तु को) बींध देते हैं। (हे भाई!) जिस मनुष्य के अन्दर प्रभु प्रेम की पीड़ा उठती है, वही जानता है कि उसको कैसे सहा जा सकता है। जो मनुष्य माया के मोह से बिरक्त होकर आत्मिक जीवन जीता है, वह संसार के कारोबार करता हुआ भी माया के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। हे दास नानक! (कहो—) हे हरि! मुझे गुरु मिला ताकि मैं इस संसार (समुद्र) से पार हो सकूं, जिस को तैरना बहुत कठिन है।२।

हम मूरख मुगध सरणागती मिलु गोविंद रंगा राम राजे ॥
गुरि पूरे हरि पाइआ हरि भगति इक मंगा ॥
मेरा मनु तनु सबदि विगासिआ जपि अनत तरंगा ॥
मिलि संत जना हरि पाइआ नानक सतसंगा ॥३॥

शब्दार्थ : मुगध—मूर्ख, न-समझ। गोविंद—हे गोविन्द! रंगा—कई लीलाएं करने वाला। गुरि—गुरु द्वारा। मंगा—मांगूँ, मैं मांगता हूँ। सबदि—गुरु शब्द द्वारा। विगासिआ—खिल पड़ा है। जपि—जप कर। अनत तरंगा—अनन्त तरंगों वाला, जिस में अनगिनत लहरें उठ रही हैं। मिलि—मिलकर (शब्द 'मिलु' और 'मिलि' का अन्तर याद रखना आवश्यक है)।३।

अर्थ : हे बेअन्त लीलाओं के स्वामि गोविंद! (हमें मिलो, हम मूर्ख न-समझ तेरी शरण में आये हैं)। (हे भाई!) मैं (गुरु से) परमात्मा की भक्ति का वरदान मांगता हूँ, (क्योंकि) पूरे गुरु द्वारा ही परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। (हे भाई!) गुरु के शब्द द्वारा अनगिनत लहरों वाले (समुद्र प्रभु) को सुमिर कर मेरा मन खिल उठा है, मेरा हृदय प्रफुल्लित हो गया है। हे नानक! (कह—) सन्त जनों को मिलकर सन्तों की संगति में परमात्मा को ढूंड लिया है।३।

दीन दइआल सुणि बेनती हरि प्रभ हरि राइआ राम राजे ॥
हउ मागउ सरणि हरि नाम की हरि हरि मुखि पाइआ ॥
भगति वछलु हरि बिरदु है हरि लाज रखाइआ ॥
जनु नानकु सरणागती हरि नामि तराइआ ॥४॥८॥१५॥

शब्दार्थ : दइआल—हे दया के घर! प्रभ—हे प्रभु! हरि राइआ—हे प्रभु सम्राट! हउ—मैं। मागउ—मैं मांगता हूँ। सरणि—शरण, ओट, आसरा। मुखि—मुख में। भगति वछलु—भक्ति से प्यार करने वाला। बिरदु—प्राचीन स्वभाव। लाज—इज़्ज़त। नामि—नाम द्वारा।४।

अर्थ : हे दीनों पर दया करने वाले! हे हरि! हे प्रभु! हे प्रभु सम्राट! मेरी विनती सुनो। हे हरि! मैं तेरे नाम का आश्रय मांगता हूँ। हे हरि! (तुम्हारी कृपा हो तो मैं तेरा नाम) अपने मुंह में डाल सकता हूँ (मुंह से नाम जप सकता हूँ)।

(हे भाई!) परमात्मा का यह आदि काल से स्वभाव है कि वह भक्ति से प्यार करता है, (जो उसकी शरण में आये, उसकी) इज़्ज़त रख लेता है। (हे भाई!) दास नानक (भी) उस हरि की शरण में आ गया है, (शरण में आये मनुष्य को) हरि अपने नाम में जोड़कर (संसार-समुद्र से) पार लगा लेता है।४।८।१५।

आसा महला ४॥

गुरमुखि ढूंढि ढूढेदिआ हरि सजणु लधा राम राजे ॥
कंचन काइआ कोट गड़ विचि हरि हरि सिधा ॥
हरि हरि हीरा रतनु है मेरा मनु तनु विधा ॥
धुरि भाग वडे हरि पाइआ नानक रसि गुधा ॥१॥

शब्दार्थ : गुरमुखि—गुरु की शरण में आकर। लधा—मिल गया है। कंचन कोट गड़—सोने का किला। काइआ—शरीर। सिधा—सीधा, प्रक्ट। विधा—बिंध गया है। धुरि—दरगाह से। रसि—रस में, आनन्द में। गुधा—भीग गया हूँ।१।

अर्थ : (हे भाई!) गुरु की शरण में आकर तलाश करते करते मैंने मित्र प्रभु को (अपने अन्दर ही) ढूंड लिया है। मेरा यह शरीर किला (मानो) सोने का बन गया है, (क्योंकि गुरु की कृपा से) इसमें परमात्मा प्रक्ट हो गया है। (हे भाई! मुझे अपने अन्दर ही) परमात्मा का नाम-रत्न, परमात्मा का नाम-हीरा (मिल गया है), (जिस से मेरा कठोर) मन (मेरा कठोर) हृदय बिंध गया है (नरम हो गया है)। हे नानक! (कहो—हे भाई!) आदि प्रभु की कृपा से बड़े भाग्य से मुझे परमात्मा मिल गया है, मेरा अपना आप उसके प्रेम-रस में भीग गया है।१।

पंथु दसावा नित खड़ी मुंध जोबनि बाली राम राजे ॥
हरि हरि नामु चेताइ गुर हरि मारगि चाली ॥
मेरै मनि तनि नामु आधारु है हउमै बिखु जाली ॥
जन नानक सतिगुरु मेलि हरि हरि मिलिआ बनवाली ॥२॥

शब्दार्थ : पंथु—रास्ता। दसावा—मैं पूछती हूँ। मुंध—स्त्री रूपी जीव। जोबनि—जवानी में (मस्त)। बाली—अनजान। गुर—हे गुरु! चेताइ—याद दिला। मारगि—रास्ते पर। चाली—चलूं। मनि—मन में।

तनि—हृदय में। आधारु—आश्रय। बिखु—ज़हर। जाली—जला दूं। मेलि—मिल। बनवाली—परमात्मा।२।

अर्थ : हे सतिगुरु! मैं मदमस्त अनजान जीव-स्त्री (तेरे दर पर) सदा खड़ी हुई (तुझ से पति-प्रभु के देश का) रास्ता पूछती हूँ। हे सतिगुरु! मुझे प्रभु-पति का नाम याद कराते रहो, (कृपा करो) मैं परमात्मा के (देश पहुंचाने वाले) रास्ते पर चलूं। मेरे मन में, मेरे हृदय में प्रभु का नाम ही सहारा है। (यदि आपकी कृपा हो तो इस नाम की कृपा से अपने अन्दर से) मैं अहं के विष को जला दूं। हे दास नानक! (कहो—हे प्रभु! मुझे) गुरु से मिला। जो भी कोई परमात्मा से मिला है, गुरु की कृपा द्वारा ही मिला है।२।

गुरमुखि पिआरे आइ मिलु मै चिरी विछुंने राम राजे ॥
मेरा मनु तनु बहुतु बैरागिआ हरि नैण रसि भिंने ॥
मै हरि प्रभु पिआरा दसि गुरु मिलि हरि मनु मंने ॥
हउ मूरखु कारै लाईआ नानक हरि कंमे ॥३॥

शब्दार्थ : गुरमुखि—गुरु द्वारा। पिआरे—हे प्यारे हरि! मै—मुझे। बैरागिआ—उदास हुआ है। रसि—(प्रेम-) जल से। भिंने—भीगे हुये। मिलि—मिलकर। मंने—पसीज जाये, हौसला रखे। हउ—मैं।३।

अर्थ : हे प्यारे हरि! मुझे देर से बिछुड़े हुये को गुरु द्वारा आ मिलो। हे हरि, मेरा मन मेरा हृदय बहुत उदास है, मेरी आँखें (बिछोड़े के कारण तेरे) प्रेम जल से भीगी हुई हैं। हे हरि! मुझे प्यारे गुरु का पता बताओ, गुरु को मिलकर मेरा मन तेरी याद में मग्न हो जाये। हे नानक! (कहो—) हे हरि! मैं मूर्ख हूँ, मुझे अपने (नाम सुमिरन के) काम में लगा।३।

गुर अंम्रित भिंनी देहुरी अंम्रितु बुरके राम राजे ॥
जिना गुरबाणी मनि भाईआ अंम्रिति छकि छके ॥

गुरि तुठै हरि पाइआ चूके धक धके ॥
हरि जनु हरि हरि होइआ नानकु हरि इके ॥४॥९॥१६॥

शब्दार्थ : गुर देहुरी—गुरु का सुन्दर शरीर। अंम्रित—आत्मिक जीवन देने वाला नाम-जल। बुरके—(औरों के हृदय शरीर में) छिड़कता है। मनि—मन में। भाईआ—भाई, प्यारी लगी। अंम्रिति—अमृत के साथ, आत्मिक जीवन देने वाले जल के साथ। छकि छके—खाकर। तुठै—मेहरबान होने से। चूके—स्माप्त हो गये। धक धके—रोज़ाना के धक्के, रोज़ाना की ठोकरें। नानकु—नानक (कहता है)।४।

अर्थ : (हे भाई!) गुरु का सुन्दर हृदय सदा आत्मिक जीवन देने वाले जल के साथ भीगा रहता है, वह (गुरु औरों के हृदय में भी) यह आत्मिक जीवन देने वाला जल छिड़कता रहता है। जिन मनुष्यों को अपने मन में प्रभु की बाणी प्यारी लगने लगती है, उनके हृदय भी बाणी का आनन्द लेकर आत्मिक जीवन देने वाले जल से भीग जाते हैं। नानक (कहता है, गुरु की कृपा द्वारा) परमात्मा और परमात्मा का सेवक एक रूप हो जाते हैं, सेवक परमात्मा में लीन हो जाता है।४।९।१६।

आसा महला ४॥

हरि अंम्रित भगति भंडार है गुर सतिगुर पासे राम राजे ॥
गुरु सतिगुरु सचा साहु है सिख देइ हरि रासे ॥
धनु धंनु वणजारा वणजु है गुरु साहु साबासे ॥
जनु नानकु गुरु तिन्ही पाइआ
जिन धुरि लिखतु लिलाटि लिखासे ॥१॥

शब्दार्थ : पासे—पास, साथ। सचा साहु—सदा स्थिर नाम-ख़ज़ाने का साहुकार। सिख—सिखों को। देइ—देता है। रासे—राशि, पूंजी। धनु धंनु—भाग्यशाली। साबासे—शाबाश! जिन लिलाटि—जिन के माथे पर। धुरि—आदि काल से। लिखासे—लिखा हुआ है।१।

अर्थ : (हे भाई!) आत्मिक जीवन देने वाली प्रभु-भक्ति के ख़ज़ाने प्रभु के पास ही हैं। इस सदा स्थिर हरि-भक्ति के ख़ज़ाने का साहुकार परम पिता परमात्मा ही है, वह अपने सिखों को यह भक्ति-धन देता है।

(हे भाई!) (प्रभु-भक्ति का व्यापार) श्रेष्ठ व्यापार है, भाग्यशाली है वह मनुष्य जो यह व्यापार करता है, नाम-धन का धनी गुरु उस मनुष्य को शाबाश देता है। दास नानक (कहता है—हे भाई!) जिन मनुष्यों के माथे पर आदि प्रभु की कृपा से (इस धन की प्राप्ति का) लेख लिखा है, उन्हीं को मिलता है।१।

सचु साहु हमारा तूं धणी सभु जगतु वणजारा राम राजे ॥
सभ भांडे तुधै साजिआ विचि वसतु हरि थारा ॥
जो पावहि भांडे विचि वसतु सा निकलै
किआ कोई करे वेचारा ॥
जन नानक कउ हरि बखसिआ हरि भगति भंडारा ॥२॥

शब्दार्थ : सचु—सदा स्थिर रहने वाला। धणी—मालिक। सभु—सारा। भांडे—शरीर। तुधै—तूही। हरि—हे हरि! थारा—तेरी ही। पावहि—तू पाता है। सा—वही। कउ—को।२।

अर्थ : हे प्रभु! तू हमारा मालिक है। तू हमारा सदा स्थिर रहने वाला धनी है। (तेरा पैदा किया हुआ यह) सारा संसार यहाँ तेरे दिये हुये नाम-धन के साथ नाम का व्यापार करने आया हुआ है।

हे प्रभु! यह सारे जीव जन्तु आप द्वारा ही उत्पन्न किये गये हैं। तेरी दी हुई आत्मा ही इन के अन्दर मौजूद है। कोई जीव (अपने उद्यम से कुछ भी नहीं कर सकता, जो भी (गुण, अवगुण) पदार्थ तू इन शरीरों में डालता है, वही नज़र आता है। हे हरि! अपने दास नानक को भी तूने ही (कृपा करके) अपनी भक्ति का ख़ज़ाना बख़शा है।२।

हम किआ गुण तेरे विथरह सुआमी तूं अपर अपारो राम राजे ।।
हरि नामु सालाहह दिनु राति एहा आस आधारो ।।
हम मूरख किछूअ न जाणहा किव पावह पारो ।।
जनु नानकु हरि का दासु है हरि दास पनिहारो ।।३।।

शब्दार्थ : हम—हम जीव। विथरह—विस्तारपूर्वक बता सकते हैं। किआ गुण—कौन कौन से गुण ? सुआमी—हे स्वामि! अपर—जिसके परे और कोई नहीं। अपारो—जिसका अन्त नहीं मिल सकता। सालाहह—हम स्तुति करते हैं। आधारो—आश्रय। किछूअ—कुछ भी। न जाणहा—हम नहीं जानते। किव—कैसे। पावह—हम पायें। पारो—पार, अन्त। पनिहारो—पानी भरने वाला, सेवक।३।

अर्थ : हे मेरे मालिक! (तू बेअंत गुणों का मालिक है), हम तुम्हारे कौन कौन से गुण गिन कर बता सकते हैं ? तू बेअन्त है, तू बेअन्त है। हे स्वामि! हम तो दिन रात तेरा ही गुण-गान करते हैं, यही हमारे जीवन का आश्रय है। हे प्रभु! हम मूर्ख हैं, हम अज्ञानी हैं, हम आपका पार कैसे पा सकते हैं ? (हे भाई!) दास नानक तो प्रमात्मा का दास है, परमात्मा के दासों का दास है।३।

जिउ भावै तिउ राखि लै हम सरणि प्रभ आए राम राजे ।।
हम भूलि विगाड़ह दिनसु राति हरि लाज रखाए ।।
हम बारिक तूं गुरु पिता है दे मति समझाए ।।
जनु नानकु दासु हरि कांढिआ हरि पैज रखाए ।।४।।१०।।१७।।

शब्दार्थ : भावै—(आपको) अच्छा लगे। प्रभ—हे प्रभु! भूलि—भूल कर, कुमार्ग पर चल कर। विगाड़ह—हम अपने जीवन को बिगाड़ रहे हैं। लाज—इज़्ज़त। हरि—हे हरि! रखाए—रखो। दे—दे कर। समझाए—समझ प्रदान करो। कांढिआ—कहा जाता है, कहलाता है। पैज—लाज। रखाए—रखो।४।

अर्थ : हे प्रभु! हम तेरी शरण में आये हैं, अब जैसे तुम्हारी मर्ज़ी हो वैसे हमें (बुरे कामों से) बचा लो। हम दिन रात (जीवन-पथ से) भटक कर (अपने आत्मिक जीवन को) ख़राब करते रहते हैं। हे हरि! हमारी लाज रखो। हे प्रभु! हम तुम्हारी सन्तान हैं, तू हमारा गुरु है। तुम हमारे पिता हो, हमारी मति को सदबुद्धि प्रदान करो।

हे हरि! दास नानक तुम्हारा दास कहलाता है (कृपा करके अपने दास की) लाज रखो।४।१०।१७।

आसा महला ४।।

जिन्ह मसतकि धुरि हरि लिखिआ
तिन्हा सतिगुरु मिलिआ राम राजे ।।
अगिआनु अंधेरा कटिआ गुर गिआनु घटि बलिआ ।।
हरि लधा रतनु पदारथो फिरि बहुड़ि न चलिआ ।।
जन नानक नामु आराधिआ आराधि हरि मिलिआ ।।१।।

शब्दार्थ : मसतकि—माथे पर। धुरि—आदि काल से। अगिआनु—आत्मिक जीवन की न-समझी। घटि—हृदय में। बलिआ—चमक पड़ा। लधा—मिल गया। पदारथो—कीमती वस्तु। बहुड़ि—दोबारा। चलिआ—गुम हो गया। आराधि—सुमिर कर।१।

अर्थ : (हे भाई!) जिन मनुष्यों के माथे पर आदि शक्ति परमात्मा (गुरु-मिलाप का लेख) लिख देता है, उनको गुरु मिल जाता है। (उनके मन से गुरु कृपा द्वारा) आत्मिक जीवन की ओर न-समझी का अंधेरा दूर हो जाता है तथा उनके हृदय में गुरु की दी हुई आत्मिक जीवन की सूझ चमक पड़ती है। उनको परमात्मा के नाम-रूपी रत्न की प्राप्ति हो जाती है, जो दोबारा (उनके पास से) गुम नहीं होता।

हे दास नानक! (कहो—हे भाई! गुरु की शरण में जाकर) जो मनुष्य परमात्मा के नाम का स्मरण करते हैं, वे परमात्मा में ही लीन हो जाते हैं।१।

जिनी ऐसा हरि नामु न चेतिओ से काहे जगि आए राम राजे ।।
इहु माणस जनमु दुलंभु है नाम बिना बिरथा सभु जाए ।।
हुणि वतै हरि नामु ना बीजिओ अगै भुखा किआ खाए ।।
मनमुखा नो फिरि जनमु है नानक हरि भाए ।।२।।

शब्दार्थ : ऐसा—ऐसा कीमती। से—वे मनुष्य। काहे—किस लिये। जगि—संसार में। दुलंभु—दुर्लभ, बड़ी मुश्किल से प्राप्त होने वाला। बिरथा—बेकार, व्यर्थ। सभु—सारा। हुणि—इस मनुष्य जीवन में। वतै—ठीक, उपयुक्त समय। अगै—परलोक में, समय व्यतीत हो जाने के बाद। किआ खाए—क्या खाएगा ? मनमुख—मनमानी करने वाले। हरि भाए—हरि को (यही) अच्छा लगता है।२।

अर्थ : (हे भाई! आत्मिक जीवन की सूझ देने वाला) ऐसा कीमती नाम जिन मनुष्यों ने याद नहीं किया, वे संसार में क्यों आये ? (उनका मनुष्य जीवन किसी काम नहीं आया)। यह मनुष्य जीवन बड़ी मुश्किल से मिलता है, नाम सुमिरन के बिना यह व्यर्थ चला जाता है। (हे भाई! जो किसान उपयुक्त समय पर खेत नहीं बोता, वह समय बीत जाने पर भूखा मरता है, वैसे ही) जो मनुष्य जीवन में ठीक समय (अपने हृदय की खेती में) परमात्मा का नाम नहीं बोता, वह परलोक में तब कौन सी ख़ुराक खायेगा, जब आत्मिक जीवन के प्रफुल्लित होने के लिये नाम-भोजन की आवश्यकता पड़ेगी। हे नानक! (कहो—) अपने मन के पीछे चलने वालों को बार बार जन्मों का चक्कर लगाना पड़ता है (उनके लिये) परमात्मा को यही अच्छा लगता है।२।

तूं हरि तेरा सभु को सभि तुधु उपाए राम राजे ।।
किछु हाथि किसै दै किछु नाही सभि चलहि चलाए ।।
जिन्ह तूं मेलहि पिआरे से तुधु मिलहि जो हरि मनि भाए ।।
जन नानक सतिगुरु भेटिआ हरि नामि तराए ।।३।।

शब्दार्थ : सभु को—हरेक जीव। सभि—सारे। हाथि—हाथ में। चलहि—चलते हैं। पिआरे—हे प्यारे ! तुधु—तुझे। मनि—मन में। भाए—अच्छे लगते हैं। नामि—नाम द्वारा। तराए—पार लगाता है।३।

अर्थ : हे हरि! तू सब जीवों का मालिक है, हरेक जीव आपका (पैदा किया हुआ है), सारे जीव आप के ही पैदा किये हुये हैं। किसी जीव के अपने बस में कुछ नहीं है। जैसे तू चलाता है वैसे सभी जीव चलते हैं। हे प्यारे! जिन जीवों को तू अपने साथ मिलाता है, जो तुम्हें अपने मन में अच्छे लगते हैं, वे तुम्हारे चरणों के साथ लगे रहते हैं।

हे दास नानक! (कहो—हे भाई!) जिन मनुष्यों को गुरु मिल जाता है, गुरु उनको परमात्मा के नाम के साथ जोड़कर (संसार-समुद्र से) पार लगा देता है।३।

कोई गावै रागी नादी बेदी बहु भांति करि
नही हरि हरि भीजै राम राजे ।।
जिन्हा अंतरि कपटु विकारु है तिना रोइ किआ कीजै ।।
हरि करता सभु किछु जाणदा सिरि रोग हथु दीजै ।।
जिन्हा नानक गुरमुखि हिरदा सुधु है
हरि भगति हरि लीजै ।।४।।११।।१८।।

शब्दार्थ : गावै—गुण गाता है। रागी—रागों द्वारा गाकर। नादी—शंख आदि बजा कर। बेदी—धर्म पुस्तकों द्वारा। बहु भांति करि—कई प्रकार से। भीजै—प्रसन्न होता है। अंतरि—अन्दर। कपटु—फ्रेब, छल। रोइ—रो कर। सिरि रोग—रोगों के ऊपर। हथु दीजै—हाथ दिया जाए। सुधु—पवित्र। गुरमुखि—गुरु की शरण में आकर।४।

अर्थ : (हे भाई!) कोई मनुष्य राग गाकर, कोई शंख आदि बजा कर, कोई धर्म पुस्तकें पढ़कर कई प्रकार से परमात्मा के गुण गाता है, परन्तु परमात्मा इन सबसे प्रसन्न नहीं होता, (क्योंकि) प्रभु (हरेक प्राणी

के हृदय की) हरेक बात जानता है। अन्दर के रोगों पर बेशक हाथ रखा जाए (अन्तर्विकारों को छुपाने का प्रयत्न किया जाए तो भी परमात्मा से छुपे नहीं रह सकते)। हे नानक! गुरु की शरण में जाकर जिन मनुष्यों का हृदय पवित्र हो जाता है, वही परमात्मा की भक्ति करते हैं, वही हरि का नाम लेते हैं।४।११।१८।

आसा महला ४॥

जिन अंतरि हरि हरि प्रीति है ते जन सुघड़ सिआणे राम राजे ॥
जे बाहरहु भुलि चुकि बोलदे भी खरे हरि भाणे ॥
हरि संता नो होरु थाउ नाही हरि माणु निमाणे ॥
जन नानक नामु दीबाणु है हरि ताणु सताणे ॥१॥

शब्दार्थ : अंतरि—हृदय में। ते जन—वे लोग। सुघड़—अच्छी मानसिक स्थिति वाले। भुलि—भूलकर। चुकि—गलती करके। भी—फिर भी। खरे—अच्छे। भाणे—प्यारे लगते हैं। थाउ—स्थान, आश्रय। दीबाणु—सहारा, फर्याद करने की जगह। ताणु—ताकत, बाहु-बल। सताणे—शक्तिशाली।१।

अर्थ : (हे भाई!) जिन मनुष्यों के हृदय में परमात्मा का प्रेम मौजूद है, (परमात्मा की दृष्टि में) वे मनुष्य सुघड़ हैं, स्यानें हैं। यदि वे कभी गलती से दूसरे लोगों के साथ (गलत बोल) बोल बैठते हैं तो भी परमात्मा को वे अच्छे प्यारे लगते हैं। (हे भाई!) परमात्मा के सन्तों को (परमात्मा के बिना) और कोई आश्रय नहीं होता, (वे जानते हैं कि) परमात्मा ही बलहीन मनुष्यों का बल है। हे नानक! (कहो—) परमात्मा के सेवकों के लिये परमात्मा के नाम का ही सहारा है, परमात्मा ही उनका बाहु-बल है (जिस के सहारे वे विकारों के मुकाबले में) बलवान रहते हैं।१।

जिथै जाइ बहै मेरा सतिगुरू सो थानु सुहावा राम राजे ॥
गुरसिखीं सो थानु भालिआ लै धूरि मुखि लावा ॥
गुरसिखा की घाल थाइ पई जिन् हरिनामु धिआवा ॥
जिन् नानकु सतिगुरु पूजिआ तिन हरि पूज करावा ॥२॥

शब्दार्थ : जिथै—जिस स्थान पर। जाइ—जाकर। सुहावा—सुन्दर। गुरसिखीं—गुरसिखों ने। भालिआ—ढूंड लिया। धूरि—धूड़। मुखि—मुंह पर। घाल—मेहनत। थाइ पई—(प्रभु दर पर) कबूल हुई। पूज करावा—पूजा कराता है। करावा—कराई। लावा—लगाई। धिआवा—धियाया, भक्ति की।२।

अर्थ : (हे भाई!) जिस स्थान पर प्यारा गुरु जा बैठता है (गुरसिखों के लिए) वह स्थान सुन्दर बन जाता है। गुरसिख उस स्थान को ढूंड लेते हैं और उसकी धूड़ी अपने माथे पर लगा लेते हैं। जो गुरसिख परमात्मा के नाम का सुमिरण करते हैं उनकी (गुरु का स्थान ढूंडने की) मेहनत परमात्मा के दर पर कबूल हो जाती है। नानक (कहता है—) जो मनुष्य (अपने हृदय में) गुरु का आदर सत्कार करते हैं, परमात्मा (जगत में उनका) आदर करवाता है।२।

गुरसिखा मनि हरि प्रीति है हरि नाम हरि तेरी राम राजे ॥
करि सेवहि पूरा सतिगुरू भुख जाइ लहि मेरी ॥
गुरसिखा की भुख सभ गई तिन पिछै होरि खाइ घनेरी ॥
जन नानक हरि पुंनु बीजिआ
फिरि तोटि न आवै हरि पुंन केरी ॥३॥

शब्दार्थ : मनि—मन में। हरि—हे हरी! करि पूरा—पूर्ण जानकर, सम्पन्न जानकर। भुख—माया की भूख। मेरी—माया की ममता। जाइ लहि—दूर हो जाती है। सभ—सारी। खाइ—(आत्मिक खुराक) खाती है।

घनेरी—बहुत लोग। हरि पुंनु—नाम सुमिरण का अच्छा बीज। तोटि—कमी। केरी—की। पुंन केरी—भले काम की।३।

अर्थ : हे हरि! गुरु के सिखों के मन में तेरी प्रीति बनी रहती है, तेरे नाम का प्यार टिका रहता है, वह अपने गुरु को कोई भूल न करने वाला मान कर उसकी बताई हुई सेवा करते रहते हैं, (जिस की कृपा द्वारा उनके मन से) माया की भूख दूर हो जाती है, उनकी संगति करके और बहुत से लोग (नाम सुमिरण की आत्मिक खुराक) खाते हैं। हे दास नानक! जो मनुष्य (अपने हृदय-खेत में) हरि नाम सुमिरण का भला बीज बोते हैं, उन के अन्दर इस भले काम की कभी कमी नहीं होती।३।

गुरसिखा मनि वाधाईआ
जिन् मेरा सतिगुरू डिठा राम राजे ॥
कोई करि गल सुणावै हरि नाम की
सो लगै गुरसिखा मनि मिठा ॥
हरि दरगह गुरसिख पैन्हाईअहि जिन्हा मेरा सतिगुरु तुठा ॥
जन नानक हरि हरि होइआ,
हरि हरि मनि वुठा ॥४॥१२॥१९॥

शब्दार्थ : मनि—मन में। वाधाईआ—खुशियां, आत्मिक उत्साह। जिन्—जिन्होंने। गल—बात, ज़िकर। सो—वह मनुष्य। मिठा—प्यारा। पैन्हाईअहि—सिरोपाउ दिये जाते हैं, सम्मानित किये जाते हैं [वर्तमान काल अन्य-पुरुष, बहु-वचन]। तुठा—मेहरबान हुआ। नानक—नानक (कहता है)। वुठा—आ बसा।४।

अर्थ : (हे भाई!) जिन प्रभु भक्तों ने प्यारे गुरु का दर्शन कर लिया, उनके मन पें सदा प्रसन्नता (उत्साह) बनी रहती है। यदि कोई मनुष्य परमात्मा के गुणों का गान आ कर सुनाए, तो वह मनुष्य प्रभु प्रेमियों को अच्छा लगने लगता है।

(हे भाई!) जिन गुरसिखों पर प्यारा प्रभु मेहरबान होता है, उनको परमात्मा के दरबार में आदर सत्कार मिलने लगता है। नानक कहता है, वह गुरसिख परमात्मा का रूप हो जाता है, परमात्मा उसके मन में सदा बसा रहता है।४।१२।१९।

आसा महला ४।।

जिन्ा भेटिआ मेरा पूरा सतिगुरू
तिन हरि नामु द्रिड़ावै राम राजे ।।
तिस की त्रिसना भुख सभ उतरै जो हरि नामु धिआवै ।।
जो हरि हरि नामु धिआइदे तिन् जमु नेड़ि न आवै ।।
जन नानक कउ हरि क्रिपा करि
नित जपै हरिनामु हरि नामि तरावै ।।१।।

शब्दार्थ : जिन्ा भेटिआ—जिन्होंने शरण ली। द्रिड़ावै—हृदय में पक्का कर देता है। तिस की—उस (मनुष्य) की। त्रिसना—प्यास। जो—जो मनुष्य। जो धिआइदे—जो मनुष्य सुमिरण करते हैं। तिन् नेड़ि—उनके समीप। करि—करे, करता है। नामि—नाम में (लगा के)। तरावै—पार लगाता है।१।

अर्थ : (हे भाई!) जिन मनुष्यों ने प्यारे गुरु का पल्ला पकड़ लिया, गुरु उनके हृदय में परमात्मा का नाम पक्का कर देता है। जो मनुष्य परमात्मा के नाम का सुमिरण करता है, उस मनुष्य की माया के लिए भूख प्यास समाप्त हो जाती है। जो मनुष्य सदा परमात्मा के नाम का जाप करते हैं, यम उनके नज़दीक नहीं आता (आत्मिक मृत्यु उन पर कोई प्रभाव नहीं करती)। हे दास नानक! (कहो—जिस मनुष्य पर) परमात्मा कृपा करता है, वह सदा उस के नाम का जाप करता है और परमात्मा उसको अपने नाम में लगाकर संसार-समुद्र से) पार लगा देता है।१।

जिन्ही गुरमुखि नामु धिआइआ,
तिन्हा फिरि बिघनु न होई राम राजे ॥
जिन्ही सतिगुरु पुरखु मनाइआ तिन् पूजे सभु कोई ॥
जिन्ही सतिगुरु पिआरा सेविआ तिन्हा सुखु सद होई ॥
जिन्हा नानकु सतिगुरु भेटिआ तिन्हा मिलिआ हरि सोई ॥२॥

शब्दार्थ : गुरमुखि—गुरु द्वारा। बिघनु—रुकावट। सद—सदा। पुरखु—महापुरुष, सामर्थ्य वाले। पूजे—आदर करता है। सभु कोई—हर एक जीव। नानकु—नानक (कहता है)। भेटिआ—शरण ली, पल्ला पकड़ा। सोई—आप ही।२।

अर्थ : (हे भाई!) जो मनुष्य गुरु की शरण में आकर प्रभु नाम का जाप करते हैं, उनके जीवन मार्ग में फिर दोबारा (विकारों आदि की) कोई रुकावट नहीं आती। जो मनुष्य (अपना जीवन साफ सुथरा बनाकर) सामर्थ्य वाले गुरु को प्रसन्न कर लेते हैं, तो प्रत्येक प्राणि उनका आदर करता है। जो मनुष्य गुरु द्वारा बताई गई सेवा करते हैं (गुरु का सहारा लेते हैं) उनको सदा ही आत्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है। नानक (कहता है) जो मनुष्य गुरु का पल्ला पकड़ लेते हैं, उनको परमात्मा स्वयं आ मिलता है।२।

[***नोट***—धिआइआ, मनाइआ, सेविआ, भेटिआ, मिलिआ—यह शब्द 'भूतकाल' में हैं। अर्थ वर्तमान काल में किया गया है।]

जिन्हा अंतरि गुरमुखि प्रीति है,
तिन् हरि रखणहारा राम राजे ॥
तिन् की निंदा कोई किआ करे जिन् हरि नामु पिआरा ॥
जिन् हरि सेती मनु मानिआ सभु दुसट झख मारा ॥
जन नानक नामु धिआइआ हरि रखणहारा ॥३॥

शब्दार्थ : अंतरि—हृदय में। गुरमुखि—गुरु के बताये रास्ते पर चल कर। रखणहारा—बचाने की सामर्थ्य वाला। किआ करे—क्या कर सकता है ? नहीं कर सकता (क्योंकि उनमें कोई विकार नहीं रह जाता, जिस की भ्रत्सना की जा सके)। सेती—साथ। मानिआ—पसीज गया, आदी हो गया। दुसट—दुष्ट, बुरे मनुष्य। झख—व्यर्थ यत्न।३।

अर्थ : (हे भाई !) गुरु के बताये हुए रास्ते पर चलकर जिन मनुष्यों के हृदयों में परमात्मा की प्रीति उत्पन्न हो जाती है, बचाने की सामर्थ्य रखने वाला परमात्मा (उनको विकारों से बचा लेता है)। जिन मनुष्यों को परमात्मा का नाम प्यारा लगने लगता है, कोई मनुष्य उनकी निन्दा नहीं कर सकता (क्योंकि कोई निन्दनीय बुराई उनके जीवन में रह ही नहीं सकती, सो, जिन मनुष्यों का मन परमात्मा के साथ एक हो जाता है, बुरे लोग (उनको बदनाम करने के लिये) व्यर्थ टक्करें मारते हैं। हे दास नानक ! (कहो—) जो मनुष्य हरि नाम का सुमिरण करते हैं, बचाने की सामर्थ्य वाला हरि (उनको विकारों से बचा लेता है)।३।

हरि जुगु जुगु भगत उपाइआ
पैज रखदा आइआ राम राजे ।।
हरणाखसु दुसटु हरि मारिआ प्रहलादु तराइआ ।।
अहंकारीआ निंदका पिठि देइ नामदेउ मुखि लाइआ ।।
जन नानक ऐसा हरि सेविआ
अंति लए छडाइआ ।।४।।१३।।२०।।

शब्दार्थ : जुगु जुगु—हर एक युग में [देखें *गुरबाणी व्याकरण*]। उपाइआ—पैदा करता आ रहा है। पैज—इज़्ज़त। देइ—देकर। मुखि लाइआ—अपने मुंह लगाया, आदर सम्मान दिया, इज़्ज़त बख़्शी। ऐसा—इस प्रकार की सामर्थ्य वाला। अंति—आखिरकार।४।

अर्थ : परमात्मा हर युग में ही भक्त पैदा करता है, और (मुश्किल

समय) उनकी इज़्ज़त रखता आ रहा है। (जैसे कि, प्रहलाद के निर्दयी पिता) दुष्ट हरणाखश को परमात्मा ने (अन्त जान से) मार डाला (और अपने भक्त) प्रहलाद को (पिता के दिये कष्टों से) छुटकारा दिलाया, (जैसे कि, मन्दिर में से धक्के देने वाले) निन्दकों तथा (जाति-) अभिमानियों को (परमात्मा ने) पीठ देकर (अपने भक्त) नामदेव को दर्शन दिया। हे दास नानक! जो भी मनुष्य ऐसी सामर्थ्य वाले परमात्मा की सेवा भक्ति करता है, परमात्मा उसको (दुःख देने वाले सभी कष्टों से) अन्त में बचा लेता है।४।१३।२०।

●